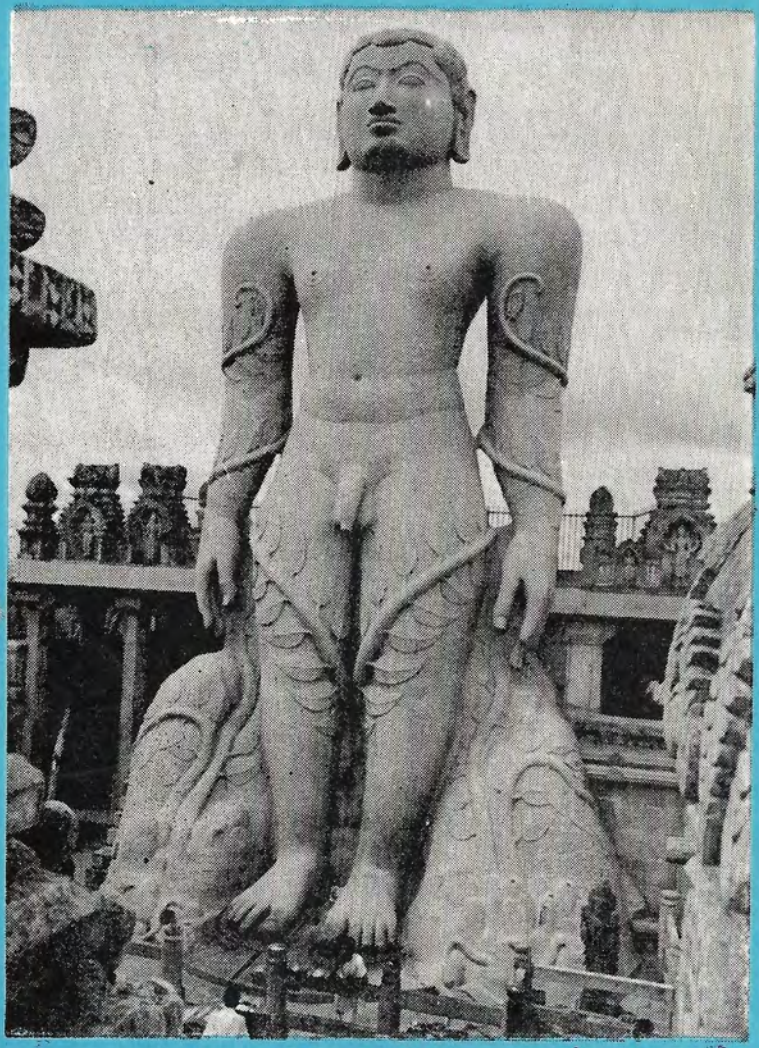

श्री गोम्मटेश्वर

कन्नड कवियों की दृष्टि में

संपादक

डा. टि.वि.वेंकटाचल शास्त्री

अनुवादक

डा. प्रधान गुरुदत्त

श्री गोम्मटेश्वर:
कन्नड कवियों की दृष्टि में

संपादक

डा. टी. वी. वेंकटाचल शास्त्री

अनुवादक

डा. प्रधान गुरुदत्त

प्रकाशक

श्री गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबलि महामस्तकाभिषेक समिति

श्रवणबेळगोळ – 563 135

1993

SHRI GOMMATESHVARA : KANNADA KAVIYON KI DRISHTI ME (SRI GOMMATESHVARA : IN THE EYES OF KANNADA POETS) Hindi Version of an anthology of Kannada Poems (Second Edition) in praise of Bahubali, the Gommateshwara of Shravanabelagola, and a few other Jaina centres of Karnataka; complied by Dr. T.V. Venkatachala Sastry, Professor of Kannada, Institute of Kannada Studies, Manasa Gangothri, Mysore – 570 006; Hindi rendering by Dr. Pradhan Gurudatta, Reader, I.K.S. M.G., Mysore– 570 006; Published by Gommateshvara Bhagavan Bahubali Mahamastakabhisheka Mahotsava Samiti 1993, Shravanabelagola, 573 135, Karnataka (S.I)

Copy Rights of the Hindi Version : Dr. Pradhan Gurudatta

First Edition : 1993; Pp. XXVIII + 143

Price : Rs. 50/-

Printed in India by M/S Sree Kantha Enterprises
D.T.P., Ramachandra Agrahar, Mysore –4

समर्पण

कर्नाटक के श्रवणबेळगोळ, कार्क्ळ, वेणूर,
गोमटगिरि,बस्ति होसकोटे, बस्ति तिप्पूर और
धर्मस्थल के तीर्थस्थानों में विराजमान

श्री गोम्मटेश्वर स्वामी को

आशीर्वचन

यह हमारे लिए बडे हर्ष की बात है कि श्री गोमटेश्वर भगवान बाहुबलि महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति 1993 की ओर से ' कन्नड कविगळु कण्ड गोम्मटेश्वर ' (श्री गोम्मटेश्वर : कन्नड कवियों की दृष्टी में) नामक कविता संकलन (संपादक डा. टी. वी. वेंकटाचल शास्त्री) के द्वितीय एवं परिवर्धित संस्करण के साथ ही, उसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो रहा है । श्रेष्ठ विद्वान एवं के अनुवादक के विशेषज्ञ डा. प्रधान गुरुदत्त जी ने अत्यल्प अवधि में इस संकलन का समर्थ अनुवाद प्रस्तुत किया है । उनको हमारा अभिमानपूर्वक आशीर्वचन पँहुचाना चाहते हैं । आशा है कि इस अनुवाद के द्वारा कर्नाटक के बाहर और अंदर रहनेवाले हिन्दी भाषा-भाषियों को इसका परिचय मिल जायेगा कि हमारे प्राचीन एवं आधुनिक कन्नड कवियों ने भगवान बाहुबलि के जीवन और संदेश को किस प्रकार प्रस्तुत किया है और उनकी भावनाएँ एवं विचारधाराएँ किस प्रकार बह रही हैं । हम यह भी आशा करते हैं कि यह अनुवाद लोकप्रिय बने ।

जय श्री गोम्मटेश की ।

स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी

श्रवणबेळगोळ

19.12.1993

महामस्तकाभिषेक

महोत्ससव पर्व

यह गीतगुच्छ है तुम्हारा अपना

भले ही की नहीं हो कोशिश
पुराने और नये कवि प्रवरों ने स्तुति करने की
गोम्मट जिन की, अणु मात्र भी
कम होगी क्या खान उस गुणरत्ननिधि के गुणों की ।।

किस तप के फल से पा लिये
तुमने वह अनुपम सौंदर्य और उन्नत घन सौष्ठव;
और हे विभु, वह अतिशय
एवं सन्नुत यश भी फैला है दुनिया भर में ।।

पा ली तुमने विजय अपनी
क्षमा से क्रोधपर, उत्सेक-परिवर्जन से उस मान पर, ।
आर्जव से उस माया पर और
लोभ पर, जो बैठे हैं जबरन, हे बाहुबलि, सिर पर ।।

भोग से होती है तृष्णा सदैव,
सुख उससे मिल पाता नहीं सचमुच इन लोगों को ।
दर्शा दिया तुमने उसी ठौर पर
कि योग ही है सुख; त्याग और विराग ही हैं सुख ।।

हे मुग्धमंदहासमुखवाले,
हे नन्हे शिशु जैसे खड़े नग्न-संत मुक्त आवरण के !
हे भूव्योम को बांधनेवाले,
हे दिशाओं में अपना विक्रम इकदम फैलानेवाले ।।

हे श्रमण घुंघुराले बालोंवाले,
पाप तुम्हारी शरण में आनेवालों का क्षण में मिटानेवाले ।
हे प्रभु, है यह गीतगुच्छ भी
तुम्हारा अपना, करो स्वीकार जिसका किया है मैंने संकलन ।।

डा. टी. वी. वेंकटाचल शास्त्री

आमुख

' कन्नड कविगळु कंड गोम्मटेश्वर ' (श्री गोम्मटेश्वर : कन्नड कवियों की दृष्टि में) नामक इस कविता संकलन के प्रकाशन के द्वारा बहुत दिनों की मेरी आशा पूर्ण हो रही है । कर्नाटक के जाने-माने प्राचीन एवं नवीन कवियों ने (जिनमें कई बुजुर्ग एवं उदीयमान कवि भी शामिल हैं) कर्नाटक के कई स्थलों में विराजमान श्री गोम्मटेश की शिलामूर्तियों का स्तवन किया है । इनमें उन्होंने बाहुबलि के व्यक्तित्व की गरिमा एवं उनके संदेशों को सुव्यक्त किया है । साथ ही, श्री गोमटेश के प्रति उनका प्रेम भी उन कविताओं में व्यंजित हुआ है । प्रेम निर्भर इस पूजा-कैंकर्य और संकीर्तनों का स्वरूप जानने केलिए गोम्मटेश जी से संबंधित कविताओं का एक संकलन प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी । ऐसी रचनाओं को इकत्रित करके, उनका विभाजन एवं विश्लेषण करके, इस संबंध में व्यापक अध्ययन करते समय मुझे इस बात का पता चला कि अनन्य गोम्मटभक्त एवं कर्नाटक के जाने-माने विद्वान श्री जी.पी. राजरत्नम जी ने भी इस दिशा में सोचा था । गोम्मट गीतावली की उनकी योजना साकार हो नहीं पायी । करीब करीब पचास वर्षों के बाद मेरी ओर से वह योजना साकार हो रही है । यह मेरे लिए संतोष एवं गर्व की बात है ।

इस संकलन में कन्नड के छोटे-बडे काव्यों में मिलने वाले गोम्मट संबंधी भागों को उद्धत नहीं किया गया है । ऐसा करने से उनको पूर्वापर कथांशों से पृथक करने की नौबत आ जाती थी; अन्य कई प्रकार के क्लेशों एवं संदिग्धताओं का भी सामना करना पडता था । अलावा इसके उनमें व्यक्ति पारम्य की दृष्टि से संजोये स्वयंपूर्ण गोम्मट संकीर्तन के भाग ज्यादातर मिल भी नहीं पाते थे । इसलिए मैंने सोचा कि पृथक पृथक कविताओं को चुनकर, एक स्तवनमाला गूंथना ही समुचित होगा ।

इसमें बोप्पण पंडित की ' गुणस्तवन गोम्मट जिनेंद्र का ' नामक रचना से लेकर इन दिनों के उप्पुंद चन्दशेखर होळळ की ' संदेश श्री गोम्मट का ' नामक रचना तक, कुल 69 रचनाओं को संकलित किया गया है । यद्यपि छन्दों को दृष्टि में रखकर इसमें विभाजन प्रस्तुत कर दिया गया है, यह दावा नहीं किया जा सकता कि कवियों का कालानुक्रम, उनकी प्रसिद्धि या कविताओं की श्रेष्ठता की ओर समुचित ध्यान दिया गया है । ऐसे एक संकलन में काव्यगुण की और ही विशेष ध्यान देना संभव भी नहीं था । व्यक्ति-महिमा की प्रशंसा और भक्ति की निर्भरता भी आखिर कोई चीज है ! इसलिए कई अच्छी कविताओं के साथ साधारण-सी कविताएँ भी इसमें शामिल की गयी हैं । लेकिन सहृदयों को यह अनुभव अवश्य ही हो पायेगा कि उनमें भी काव्यमधु की बूंदे टपक रहीं हैं ।

इसका प्रथम संस्करण-जिसमें 58 कविताएँ संकलित की गयी थीं - कार्कळ की भगवान श्री बाहुबलि स्वामी महामस्तकाभिषेक समिति की ओर से 1990 में प्रकाशित हुआ था । यह द्वितीय एवं परिवर्धित संस्करण - जिसमें 69 कविताएँ संकलित हुई हैं - श्रवणबेळगोळ की गोमटेश्वर भगवान बाहुबलि महामस्तकाभिषेक महोत्सव समिति 1993 की ओर से प्रकाशित हो रहा है । यह मेरे लिए बडे हर्ष एवं गौरव की बात बनी है । इस संबंध में कार्कळ के स्वस्तिश्री ललित कीर्ति भट्टारक स्वामी जी तथा श्रवणबेळगोळ के स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहना हूँ ।

बारह साल में एक बार संपन्न होनेवाले महामस्तकाभिषेक महोत्सव पर्व की महत्ता के उपलक्ष्य में और उसके अखिल भारतीय स्वरूप को दृष्टी में रखते हुए इस संकलन के हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवादों को भी प्रकाशित करने का सर्वथा स्तुत्य निश्चय किया स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी ने । उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहता हूँ । मेरी सूचना को मानकर, मेरे आत्मीय मित्र डा. प्रधान गुरुदत्त जी ने बहुत ही कम समय में इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है । आशा करता हूँ कि यह अनुवाद हिन्दी भाषा-भाषयों को स्वीकरणीय होगा ।

हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन में हमें पूर्ण सहयोग मिला है श्रीकान्त एंटर-प्राइजस के श्री के.वि. संपत्कुमारन जी से । इन दोनों मित्रों को धन्यवाद देना चाहता हूँ ।

19-12-93
मैसूर

टी. वी. वेंकटाचल शास्त्री

भूमिका

जिनसेनाचार्य जी के ' पूर्वपुराण ' में (पर्व 16 प. 1-26) बाहुबलि का बहुत ही सुंदर वर्णन ही नहीं बाहुबलि से संबधित कई अन्य विचार भी हमें मिलते हैं । यह बाहुबलि था प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभस्वामीका पुत्र । इसकी बड़ी माता का नाम था यशस्वती जिसके कोख से भरत आदि अन्यपुत्रों तथा ब्राह्मी नाम की पुत्री का जनम हुआ था । बाहुबली की अपनी माँ का नाम था सुनंदा । सगी बहिन थी सौंदरी । बाहुबलि के उद्धार का परिक्रम शुरु हुआ उसके सेना नायक के भव से । सेनापति, भोगभूमिज आर्य, प्रभंकर देव, अकंपनराजा, कल्पातीत देव, महाबाहु राजा, अहमिन्द-इस अनुक्रम में जो जीव चला आया था, वह अब वृषभदेव के पुत्र बाहुबलि के रूप में जन्मा था । बाहुबलि की बहुत ही दृढ देह थी; रूप राशि भी ऐसी थी कि सुन्दर स्त्रियाँ अपने आप उसके मोह में आ जाती थीं; भोग के अनुभव की दृष्टि से कोई कमी नहीं थी । स्वयं वृषभदेव ने अपने इस पुत्र को कामशास्त्र, स्त्री-पुरुष-लक्षणशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, रत्नपरीक्षा शास्त्र आदि अनेक विद्याएँ सिखाई थीं । उसका पारिवारिक जीवन भी बहुत ही सुखमय था । इस महान पराक्रमी में आत्माभिमान की मात्रा अधिक ही थी । यद्यपि उसका स्वभाव अचल था, फिर भी दूसरों से वह जलता नहीं था । अकारण ही किसी पर टूट पड़नेवाला भी नहीं था ।

लेकिन एक समय ऐसा आया कि अपने अग्रज एवं जगविजयी भरत चक्रेश्वर के साथ उसे भिड़ना पड़ा । इसकी प्रतीक्षा भी उसने नहीं की थी, इच्छा भी नहीं की थी । अपने पिता से उसे जो राजत्व मिला था, उसको वह स्वतंत्ररूप से निभा रहा था । प्रजा भी उसे बहुत चाहती थी । उसे कोई चिन्ता नहीं सताती थी । इन सब बातों का उसे गर्व था । लेकिन अब तो भरत की ओर से संदेश आया था कि वह भरत की शरण में आये

और उसके सामने सर नवाकर, नजराना पेश करे । बडे भाई के इस अनुरोध के सामने झुक जाना, अपने आत्मभिमान को तिलांजलि देना, उसके अधीन होकर राजकरना या जिन्दगी बिताना उसको पसंद नहीं आया । इस संदेश ने उसे रूष्ट कर दिया । उसने प्रतिक्रिया व्यक्त की "बड़ा भाई हुआ तो क्या ? दासता तो आखिर दासता ही होती है । अब तो इस अग्रज को पिता के समान देखा नहीं जा सकता । अब तो वह मेरा प्रतिद्वंदी है । युद्ध में उसको हराकर ही दम लेना चाहिए । " अन्य भाईयों ने प्रतिरोध का मार्ग नहीं अपनाया । उन्होंने तपोमार्ग की शरण ली । इनमें और बाहुबलि में यही भेद था ।

सचिवों की सलाह के अनुसार इन दोनों के बीच धर्मयुद्ध - दृष्टि युद्ध, जलयुद्ध और बाहुयुद्ध या मल्लयुद्ध - हुए । इन सभी युद्धों में भरत की हार हुई । बाहुबलि यदि चाहता तो मल्लयुद्ध में भरत का काम तमाम कर सकता था । लेकिन उसने ऐसा नहीं किया । क्योंकि बाहर से कठिन लगने पर भी वह अंदर से बहुत ही नरम था । उसने सोचा कि बड़े भाई के प्रति मुझे यों बरतना नहीं चाहिए था, उसको लज्जित नहीं करना चाहिए था । यों वह पश्चात्तापदग्ध हो गया । उसने भाई को मारा नहीं, मगर उससे माफी माँगी । यह थी उसकी उदत्तता। यों भोगजीवन के बीच में ही विजय की चोटी पर ही उसने राज्य और कोश, पत्नी आर पुत्र सभी का त्याग कर दिया और मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली । वह उग्र तपस्या में निमग्न हो गया । यह वह संन्यास नहीं था जिसको जीवन के प्रति जुगुप्सा के कारण या वृद्धाप्य की जर्जरावस्था कारण ग्रहण किया हो, यह वह सन्यास था जिसका वरण उसने किया था अपरिमित सुखभोगों की चोटी पर पहुँचने की स्थिति में ! उसकी तपश्चर्या भी असाधारण थी, दीर्घकाल की थी । केवलज्ञान की प्राप्ति में भी विलंब हुआ क्योंकि ये सारी बातें उसके मन में खटक रही थीं - यह बात कि उसने अपने बडे भाई के अभिमान को ठेस पहुँचायी थी, धरती के जिस भाग में खड़े होकर वह तपस्या कर रहा था वह भरत का था ! आदिनाथ की सलाह के अनुसार भरत ने उसका यह मनः-कषाय दूर किया और

उसे केवनज्ञान की प्राप्ति हुई । बाहुबलि की इस जीवन गाथा से हमें यह संदेश ज़रूर मिलता है कि भोग जीवन के बीच में रहते हुए भी भोगनिरसन को साधना संभव है , पारिवारिक जीवन में भाइयों के बीच मनुमुटाव होने पर भी, स्नेह, सहानुभूति पश्चात्ताप और त्याग के द्वारा उसको दूर किया जा सकता है, लौकिक सुख और स्थान व मान केलिए जो लड़ाई-झगड़े किये जाते हैं, वे भी हमें पारलौकिक सुख की ओर ले जा सकते हैं । अगर इस सत्य को हम पहचान पायेंगे तो वह सचमुच बड़ी साधना होगी, बड़ी शिक्षा होगी । गोम्मट की मूर्ति भी इसी संदेश का प्रतीक बनी है । वह हमें इस सत्य की याद दिलाती हैं ; हमें उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है ! देश और काल से अतीत इस सत्य को इस प्रेरणा की महत्ता को यदि हम लोग पहचान पायें तो हमारा जीवन अवश्य ही सार्थक होगा ।

***

कहा जाता है कि बाहुबलि की जितनी मूर्तियाँ भारत में पहचानी गयी हैं उनमें से बहुत ही प्राचीन मूर्ति कर्नाटक में पायी गयी है । बिजापुर जिल्ले के बादामी गांव में जो गुहांतर-देवालय पाये जाते हैं उनमें से अंतिम जैन-गुफा में बाहुबलि की उभरी शिल्पकला की करीब साढे सात फुट की मूर्ति मिलती है । वह कायोत्सर्ग की भंगिमा में रची गयी है (करीब 7 वीं सदी)। इसी अवधी की इक और रचना इसी जिले के ऐहोळे गांव के पास की मेगुति पहाड़ी पर की मेणबसदि (जिनालय) में पायी गयी है । यह भी कायोत्सर्ग की भंगिमा में है । उसके बाद 9 वीं सदी में प्रायः नृपतुंग के समय में बनायी गयी एल्लोरा की जैन गुफाओं में भी बाहुबलि की कई मूर्तियाँ पायी गयी हैं । बताया गया है कि इनकी संख्या बारह है । ये सभी उभरी शिल्प-कला की मूर्तियाँ हैं ।

इनके बाद दक्षिण कर्नाटक के श्रवणबेळगोळ में, गंग राजाओं के समय में बाहुबलि की महान मूर्ति का निर्माण किया गया जो शिल्प कला की उत्कृष्टता की दृष्टी से बादामी के चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों की शिल्पकला को बहुत पीछे छोड़ जाती है । करीब

58 फुट ऊँचाई की कायोत्सर्ग भंगिमा की इस दिव्य मूर्ति की स्थापना करवायी सन् 981 में गंगवंश के राजा के सचिव चावुंडराय ने । दुनिया की सबसे ऊँची एक शिला की यह मूर्ति शिल्पकला की दृष्टी से प्राचीन ही नहीं है, बल्क परिपूर्ण भी है । दुनिया की शिल्पकला को यह कर्नाटक की निराली भेंट है । इस मंगल मूर्ति से प्रेरणा प्राकर कर्नाटक के अन्य भागों में भी कई ऊँची मूर्तियाँ समय समय पर तराशी गयी हैं ।

दक्षिण कन्नड जिले के कार्कळ शहर के पास निर्मित बाहुबलि की मूर्ति की ऊँचाई है 41 फुट और 6 इंच । भैरवराजा के पुत्र वीर पांड्य भैरव राजा ने 1422 मे इस मूर्ति का प्रतिष्ठापन करवाया । तपश्चर्या का शांत मुखभाव इस मूर्ति में अंकित है । कहीं और इसको तराश कर, यहाँ लाकर इसका प्रतिष्ठापन कर दिया गया है । चदुर चंद्रम नाम के इक कवि की रचना में इसका चित्रण हमें मिलता है । इसी जिले के वेणूर में 36 फुट ऊँची मूर्ति जो पायी जाती है उसका प्रतिष्ठापन करनेवाले थे चावुंड... केलिए भूषणप्राय अजिल घराने के तिम्मराजा ने । 1604 में उसने यह कार्य साधा ।

अपनी सुंदरता, ऊँचाई और ख्याति के कारण ये तीनों मूर्तियाँ कर्नाटक के कवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती आयी हैं । खासकर श्रवणबेळगोळ तथा कार्कळ की मूर्तियों के आधार पर प्राचीन एवं आधुनिक कन्नड कवियों ने काव्यों की तथा कविताओं की रचनी की है । दक्षिण कन्नड जिले के कवियों ने, स्वाभाविक रूप से, कार्कळ की मूर्ति की प्रशंसा की है । यह तो आश्चर्य की बात है कि वेणूर की मूर्ति के आधार पर कोई भी रचना नहीं की गयी है ।

मैसूर के पास गोम्मटगिरि में – जिसको श्रवण की पहाड़ी कहा जाता है - 18 फूट की ऊँचाई की बाहुबलि की एक मूर्ति है । किसने, कब इसका प्रतिष्ठापन करवाय–इसके बारे में हमें निश्चित रूप से कुछ भी मालूम नहीं है । यों माना गया है कि चावुंडराय के वंशज और चेंगाळ्व घराने के इस प्रान्त के सामन्त ने इसका प्रतिष्ठापन करवाया है । इस क्षेत्र के गोम्मट के जीर्णोद्धार के उपरांत जब पहली बार महामस्ताकभिषेक संपन्न

हुआ, उसके उपलक्ष्य में कर्नाटक के जाने-माने महाकवि श्री कुवेंपु जी ने ' श्री गोम्मट महामस्ताकाभिषेक की प्रगाथा ' के नाम से एक कविता की रचना की है वह अपने आप में बहुत ही सुंदर है ।

कृष्णराज सागर (मैसूर से करीब दस मील की दूरी पर है) जलाशय के पास कावेरी नदी के उत्तर की ओर कृष्णराजपेट तालूक के माविनकेरे नामक गांव के पास रहनेवाले बस्ति-होकोटे में साढ़े चौदह फुट की ऊँचाई की एक मूर्ति है । समझा गया है कि होय्सळ वंश के राजा विष्णुवर्धन के समय में (1110-1152) पुणिसय्या नामके उसके एक अफसर ने प्रायः इसका प्रतिष्ठापन करवाया ।

मंड्या जिले के मद्दूर तालूक के बस्ति तिप्पूर के पास रहनेवाली इक पहाड़ी पर (दोड्ड बेट्टा) 10 फुट की ऊँचाई की गोम्मट की मूर्ति है । यह तो मालूम नहीं हुआ है कि किसने इसका प्रतिष्ठापन करवाया । लेकिन इस-केलिए हमें प्रमाण मिलते हैं कि आठवी सदी से ही यह जैनियों का केन्द्र बना हुआ था ।

हमारे जमाने में ही धर्मस्थल के बाहुबलि विहार में 31 फुट की ऊँचाई की एक बृहत मूर्ति का प्रतिष्ठापन कर दिया गया है । धर्मस्थल के पिछले धर्माधिकारी स्व. रत्नवर्मा हेग्गडे जी तथा आजकल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेग्गडे जी ने जो सपने देखे थे, जो कोशिशें की और जो साहस दर्शाया उन्हीं के फलस्वरूप 1973 में इसका प्रतिष्ठापन कर दिया गया है । श्री गोपाल शैणै जी ने इस मूर्ति को तराशा है ।

कर्नाटक में पायी जानेवाली बाहुबलि की ज़्यादातर मूर्तियाँ कायोत्सर्ग भंगिमा की हैं । इस मूर्ति के पांवों के पास या तो सांपों से युक्त बांबियां होती हैं या इधर उधर चलते दिखायी देने वाले सांपो या फन निकाले सांपो का उत्कीर्णन देखने में आता है । हाथ और पांवों के ऊपर लताएँ फैली हुई हैं । प्रतिमायोग में उग्र तपश्चर्या में खड़े बाहुबलि की भंगिमा केलिए तथा उत्कीर्णन की सूक्ष्मताओं केलिए प्रेरणा मिली है प्राचीन काव्य

रचनाओं से । ऐसी एक सुंन्दर एवं प्राचीन मूर्ति का वर्णन हमें देखने को मिलता है बोप्पण पंडित की रचना में जो इसमें संकलित है । तपोयोग में पत्थर के जैसे खड़ा यही बाहुबलि ही उन्नत ' कुक्कुटेश्वर जिनेश्वर ' के रूप में चावुंडराय के द्वारा श्रवणबेळगोळ में संस्थापित हुआ। उसके बाद कार्कळ तथा वेणूर में उसका अवतरण हुआ । सर्वत्र उसका आविर्भाव हुआ है जिनसेनाचार्य जी के द्वारा चित्रित मानदंडों के अनुरूप ही ।

सदा से कन्नड कवियों को गोम्मट ने अपनी ओर आकृष्ठ किया है । उसके जीवन और संदेशों को आत्मसात करने का प्रयत्न किया है इन कवियों ने अपने ही ढंग से, अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार । इनकी झांकियाँ मिलेंगी अगले पृष्ठों में ।

टी. वी. वेंकटाचल शास्त्री

बोप्पण पंडित

1. स्तुति श्री गोम्मट-जिनेन्द्र की

श्री गोम्मट-जिनदेव की, जिसकी नित करते हैं
पूजा नर, नाग, अमर, दितिज और खचरपति भी,
योग की अग्नि से हैं जो बने हुए आप हतकाम ही,
योगी भी करते हैं ध्यान जिसका, उस अनमेय की
करूँगा मैं स्तुति प्रेम से औंर हृदय के अंतराल से ॥ 1

क्रम से भिड़ने पर भी हराने में असमर्थ हो, भूलकर वचन,
भरत ने किया अक्रम से प्रयोग चक्र का, हुआ जो निष्प्रभ ।
इससे लज्जित अपने अग्रज को महीराज्य का उसने दिया दान;
तपसे किया विध्वंस कर्मों का ! कौन हैं समान इस मनोन्नत का ?

सारे भूमंडल को हरा देनेवाले उस पुरुनन्दन ने,
सीमांत देश में पौदनपुर के, करवा दी प्रतिष्ठापना,
बाहुबल से विजय अपना साधनेवाले व केवली
बाहुबलि की पांच सौ कमान ऊँची प्रतिमा की ॥ 3

बीतने पर काफ़ी समय के, उस जिनांकित धरावलय में
हुआ जनम जब लोकभीकर कुक्कुट-सर्प-संकुल का,
उस अघारि को मिला तब नाम कुक्कुटेश्वर का; हुआ
वह गोचर आम लोगों को, और अगोचर अहिमंत्रनिपुणों को ॥4

सुनाई देती है अवाज़ देवदुंदुभियों की, दिखाई देती है
दिव्यार्चना भी जिनदेव की; पांवों के नखों से निकली
कान्ति के लीलादर्पण में देख पायेंगे लोग अपने अतीत को !
अतिशय महिमा उस देव की है विख्यात सारे जाग में !॥ 5

सुनकर लोगों से जिनदेव के महायश की बातें, हुई उत्पन्न
लालसा मन में उसे देखने की; सोचने पर वहाँ जाने की, बताया
लोगों ने कि है वह बहुत दूर और दुर्गम भी; बनवायी तब इस
चावुंडराय ने उस कुक्कुटेश से मिलती जुलती सी प्रतिमा !॥ 6

सम्यक ज्ञान, दर्शन और चारित्रय का हुआ था मानों संगम;
गंगकुलचन्द्र राचमल्ल भूमिप थे सारे जग में सुविख्यात !
उसकी तुलना मात्र में द्वितीय चावुंडराय थे मनु के समान !
उन्होंने साहस से करवा दी प्रतिष्ठापना उस देवमूर्ति की ॥ 7

हो जाये यदि आकृति बहुत लंबी, होगी नहीं सुन्दरता उसमें ।
हो यदि उसमें उन्नति और सुन्दरता, होगी नहीं विशेषता उसमें ।
हुआ है संगम इसमें उन्नति, सुन्दरता और विशेषताओ का !
है क्षिति-संपूज्य और आत्मोपम यह श्रीरूप गोम्मट का !॥ 8

न हुआ समर्थ मय भी उत्कीर्ण करने में मूर्ति जिनदेव की
न हुआ समर्थ देखने में उसको नाकलोक का अधिपति भी;
न हुआ समर्थ स्तुति करने में फणिनायक भी ! होंगे समर्थ कैसे
और लोग उत्कीर्ण करने, देखने व वर्णन करने में कुक्कुटेश का ?9

भूलकर भी उड़ते नहीं पक्षियों के समूह उसके सिर के ऊपर;
बगल में दोनों बिराजती है छाया केसरी के उज्जवल वर्ण की;
देखा है इस विस्मय को तीनों लोकों ने आँखों से अपनी !
तो कीर्तन कर पायेंगे कोन ऐसे श्री गोम्मटेश जिनदेव की ! 10

नागलोक है बुनियाद, भूतल है स्थल और दिशाएँ हैं दीवार
सुरलोक है छत, कलश हैं देवताओं के विमानों के समूह;
टिमटिमाते तारे हैं मणिवितान-ऐसा नित्य निलय है बना,
गोम्मटेश के वास्ते, होते हैं जिसके दर्शन वाणि में जिनों की । 11

अनुपम रूप है ? मदन ही ! सबसे बढ़कर है ? जीता है चक्रि को !
उदार है ? जीती हुई पृथ्वी का ही कर दिया है दान ! अभिमानी है ?
पांव तले की धरती को भी मानता है वह दान में दी गयी चीज़ !
केवलज्ञानी है? साक्षी है विनाश कर्मबन्धों का ! है यह कितना उदात्त?

करें स्थिर परमोन्नत जिनदेव अभिमान के इस भाव को ।
करें प्रदान अंगज शुभ-सौभाग्य ! दंभ भुजबल का जिसने
करें दिया विनाश, पैदा करे वह हममें विश्वास भुजबल पर; ।
करें ऐसा श्री गोम्मटेश कि हमारी तृष्णा का हो जाये उच्छेद । 13

उभर आयी उज्ज्वल कान्ति से और चारों फैली सुगंध से
दसों दिशाओं को करते प्रभावित, नमेरू पुष्पों की हुई है वर्षा
दिव्य मनोहर शीर्ष पर श्री गोम्मटेश के, देख जिसको हुआ है
संतृप्त सुरलोक भी ! यह है महिमा देव की ! आश्चर्य है कहाँ ?14

हुए दर्शन मुझको; हुए दर्शन अवश्य मुझको, ! कर रहे थे
जय घोष वनिता - बालक - वृद्ध और गोपलकों के समूह ।
हुई दिन भर वर्षा जिनाधीश के उत्तमांग पर सुमनों की !
देख इसको हुए सचमुच संतृप्त सारे नयन इस भूलोक के । 15

सेवा में गोम्मटनाथ की, इस परम कृपालू परमेश्वर की
मानों आ पहुँचे हैं टिमटिमाते अनगित समूह तारों के ।
भक्ति से हुई संपन्न वर्षा असामान से निर्मल सुमनों की ।
देख अद्भुत यह पुष्पवृष्टि, रहीं विस्फारित आंखेलोक की । 16

आदि चक्रधर भरत को जब हराया मल्लयुद्ध में, हराकर
जब पापरूपी महान शत्रु, को किया था प्राप्त केवलज्ञान,
देव समूह की ओर से जैसे हुई थी पहले वर्षा सुमनों की,
लीला रूप में अब हुई वर्षा फूलों की बाहुबलि के ऊपर । 17

बेकार ही क्योंकर लगे हो पूजा में ऐसे कई देवताओं की,
करा पाते नहीं दर्शन जो उस ज्योतिर्मय रूप के कभी ?
भटका रहे हो क्योंकर अपने आपको इस भवकानन में ?
करो ध्यान गोम्मट का, मिटे ताकि भय जरा-मरण का ॥ 18

करो न कभी इनका सम्मान-हत्या, असत्य वचन, चोरी और
मोह परांगना के प्रति व आशा परिग्रह की । उलझने से इनमें
हो जावेगी बरबादी हमारी-इन्द्रलोक में और परलोक में ।
ऊँचे पहाड़ पर स्थित गोम्मट है ढिंढोरा पीट रहा इस सत्य का!

हमको, इस बसंत को, इस चन्द्रमा को, कलियों के बने इस
कमान को, और फलों के तीर को-बनाकर इन सबको
अनाथवत, तप करने की ठान कर, पाओगे तुम और क्या ?
निर्दयी हो तुम कैसे ? सुनाई नहीं देता रोना अतःपुर का ?

तज दिया क्योंकर आज हमको ? यों मारे अतीव दुःख के,
भूललनाएँ तथा लतांगिनियाँ अतःपुर की आ चिपकी हैं मानों
बाहुबलि से वल्मीक एवं लताओं के रूप में, हुई है वंदित
तपोनिमग्न मूर्ति गोम्मट की अहीन्द्र, मुनीन्द्र और सुरेन्द्रों से । 21

"हे अनुज ! भाई मेरे सभी, ले चुके दीक्षा तपस्या की ।
चलो यदि तुम भी तपस्या केलिए, शोभेगी नहीं लक्ष्मी मुझे ।"
--यों लाख बिनती करने पर भी अग्रज के, दीक्षा ले ली तुमने ।
यह निर्णय तुम्हारा आज बना है आदर्श आर्य जनों केलिए ॥ 22

"मानों मत ऐसा कि पांव तले की यह धरती है मेरी ।
यह धरती है न मेरी, न तुम्हारी । उपदेश से अभव के,
ध्यान हमको करना है सम्यक ज्ञान, दर्शन व चारित्रय का ।"
अग्रज की इन उक्तियों से मनःकषाय भी धो डाला तुमने! 23

अनुयायियों को अपने देकर उपदेश बुरी तपस्या का, रहेंगे
ये अन्य गुरु सभी उलझे अंगसंग में आप अंगनाओं के !
ये हैं ऐसे होती है जिनकी करनी और कथनी आप भिन्न !
अपने को, औरों को सुख देनेवाले तप से तुम बने आदर्श ॥ 24

अपने मन को अचल रखकर सच्चे आत्म के ध्यान में यहाँ
मगन तुमको देख, मुँहकी खा गये मोहनीय अघाति कर्म ।
उदय से बल, दृष्टि, ज्ञान और सुख से पूर्ण केवलज्ञान के,
साधकर विनाश अघाति कर्मों का, प्राप्त किया मुक्तिपद तुमने ।25

धन्य हैं वे लोग करते हैं जो पूजा सुंगधित वन-कुसुमों से,
करते हैं प्रदक्षिणा तुम्हारी मूर्ति की और स्तुति भी मन से !
धन्य हैं वे लोग जो इन्द्र के जैसे करते हैं अर्चना तुम्हारी,
यह जानते हुए कि करनी है अर्चना तुम्हारी क्योंकर और कैसे !26

कुसुमास्त्र बाहुबलि में था निहित पूर्व में महिमा कामसाम्राज्य की ।
वसुधा के साम्राज्य को अपनाये और भरत के हाथों प्रयुक्त उस
सूर्य-सम प्रकाशवाले चक्र का समाना करने की थी इच्छा तुममें ।
मगर मुक्ति साम्राज्य के अर्थ ली तुमने दीक्षा । क्यों न हम भी ?

उस पाप का, जो भर गया था मुझमें बहुत पहले से ही,
कर दूँगा निर्मूलन धीरे धीरे, मन से, वचन से और तन से ।
इस उदश्य से है किया स्तोत्र सुजनोत्तंस नामके विरुद से
जाने माने इस कवि ने प्रेम से गोम्मटेश जिन के प्रति अपने 28

सम्यक दर्शन, ज्ञान और चारित्रय से सुशोभित वे भव्य हैं
बने रहते सदैव मेरे सिर केलिए सुन्दर आभूषण के समान ! कहा गया है
बोप्पण को सुजनोत्तंस इस अन्तश्सत्य के कारन;
न इस कारन कि बना है वह सुजनों के लिए उत्तंस समान । 29

जिनदेव की स्तुति से भरपूर इस शिलालेख की है प्रेम से
की रचना जिनागम से भलीभाँति परिचित, और उसी के बल से
पापों से आप विमुक्त, और सुकवि समाज की ओर से प्रशंसित
और निर्मल कीर्ति से सालंकृत इस आपके सुजनोत्तंस ने । 30

अति श्रेष्ठ ' जिन सिद्धान्त ' के चक्रेश्वर नयकीर्ति व्रतीन्द्र के
प्रिय शिष्य हैं यह भालचन्द्र जी गुरुवर, बन चुके हैं जो
परिपक्व चित्तवाले और कलाधर भी अध्यात्म विद्या के;
पा ली है उसने उज्ज्वल कीर्ति भी, है जो लोकविश्रांत-सी । 31

आदेश से उस मुनीन्द्र के, गोम्मट जिनेन्द्र का किया है कीर्तन
इस शिलालेख में कन्नड कवियों में श्रेष्ठ बोप्पण पंडित ने ।
करवाया है इसको प्रेम से उत्कीर्ण कवडमय्या के सुत देवण ने;
करवाया है इसका सादर प्रतिष्ठापन वागडे के हमारे रुद्र ने। 32

अज्ञातकर्तृक

2. श्री गुम्मटाधीश पंचक

हुए आज दर्शन मुझको उस भव्यजनप्रमोदकर के,
हुए आज मुझको दर्शन उस लोक पूज्य देव के,
हुए आज मुझको दर्शन उस कर्मविनाशकारी देव के,
हुए आज मुझको दर्शन उस सच्चे आनंदप्रदायक के,
हुए आज मुझको दर्शन उस कामदेव के दंभहर के,
हुए आज मुझको दर्शन उस तपसे कमनीय मूर्ति के,
हुए आज मुझको दर्शन ऐसे कि मन मेरा भर आया है
संतोष से दर्शन के कारन श्री गुम्मटाधीशजी के ।।1।।

हुए आज दर्शन मुझको उस शांतरसप्रपूर्ण के,
हुए आज दर्शन मुझको उस विलसत् प्रोद्दामचिन्मूर्ति के,
हुए आज दर्शन मुझको उस संभवस्थान के,
हुए आज दर्शन मुझको नित सुख-संपदाओं के स्रोत ।
हुए आज मुझको दर्शन उस सम्यक-ज्ञानयुक्त के,
होता है जो सदैव निश्चल, निर्मल और सफल ।
हुए आज मुझको दर्शन ऐसे कि मन भर आया है
संतोष से दर्शन के कारन श्री गुम्मटाधीशजी के ।।2।।

हुए आज दर्शन मुझको मानों खिल उठे भाग नयनों के,
किए आज दर्शन मैंने आनंद से उस पावन मूर्ति के,
ततखन मानों पनप उठे मुझमें कोंपले कुतूहल के ।
किए आज दर्शन मैंने दिल से उभर आये प्यार से ।
हुए आज मुझको दर्शन भलीभाँति से ऐसे कि
लगा मेरे मन को ऐसा कि हुए सार्थक नयन मेरे ।
हुए आज मुझको दर्शन ऐसे कि मन मेरा भर आया है
संतोष से दर्शन के कारन श्री गुम्मटाधीशजी के ।।3।।

हुए आज दर्शन मुझको, मृत्यु से कोसों दूर उस देव के,
हुए आज मुझको दर्शन घोराकार-संसार से छूटे उस देव के,
हुए आज मुझको दर्शन सद्गुणों के धाम उस देव के,
हुए आज मुझको दर्शन परमकारूण्यसागर के उस चन्द्रमा के
हुए आज मुझको दर्शन समसमत्वीभावसज्जित उस देव के,
हुए आज मुझको दर्शन ऐसे कि मन भर आया है
संतोष से दर्शन के कारन श्री गुम्मटाधीशजी के ।। ।।4।।

हुए आज दर्शन मुझको उस महान और धीर देव के
बने हैं जो आधार प्रबल बोध केलिए जगत की भलाई के,
हुए आज दर्शन मुझको सुविख्यात उस जिनदेव के
आ रगडते हैं देवता भी मुकुट चरणकमलों में जिसके,
हुए आज दर्शन मुझको उस कमनीय जिनदेव के,
बना है जैसे कान्त निश्चल-नित्य-निर्वृति-पक्ष का
हुए आज मुझको दर्शन ऐसे कि मन मेरा भर आया है
संतोष से दर्शन के कारन श्री गुम्मटाधीश जी के ।। ।।5।।

मधुर

3. स्तुति गुम्मट की

श्रीपादकमल की ओर खींचे जाकर
उसमें समा जानेवाले मधुकर के जैसे,
नाभिरूप के भंवर में फंसे जाकर
छटपटाती छोटी सी मछली के जैसे,
हुए जब दर्शन तुम्हारे मुखचन्द्र के,
चटुल चकोर समूह के जैसे
नाच उठे हैं ये दोनों नयन मेरे ।
बाप रे, बना है शरीर तुम्हारा कैसी
अक्षुण्ण-निधि लावण्य की, हे गुम्मटेश ।।1।।

बरसात से सिकुड़ा हुआ नहीं है जो
और ताप से सूर्य के हुआ नहीं है बेचैन जो,
प्यार से बच्चों के जैसे, मुग्ध मन से
उलझने पर उस सम्यक तपोमार्ग में
हाथ आ जाएगी अक्षय-श्री अवश्य तुमको ।
है नहीं इसमें संदेह भी कोई क्योंकि
ढिंढोरा है पीट रही यह मूर्ति सारे जग में ।
समझ सकते हैं वे लोग भी कैसे
जिनका है अक्ल ही नहीं ठिकाने
सामर्थ्य तुम्हारी निश्चल श्रीमूर्ति की, हे गुम्मटेश ! ।।2।।

भूनाथ के आस्थान में बना हुआ है जो चूडामणि,
विनय और अनुकंम्पा जैसे सद्गुणों के अधीन,
इस मधुर कवीन्द्र ने सद्-भक्ति से अपनी,
की है रचना नव्य, श्रव्य और दिव्य इस अष्टक की,

लगता है जो सदैव मधुर अभिनव प्रातिहार्य जैसे
उन सब को जो करें वाचन या अध्ययन इसका !
करें उन सबको प्रदान नित आनंद और सौभाग्य
श्री बेळगोळ नगरी के नायक श्री गुम्मटेश जी हमारे ! ।।3 ।।

एम. गोविन्द पै

4. स्तुति श्री गोम्मट जिन की

जय हो, श्री गोम्मट स्वामी ! करूँगा स्तवन गोम्मट का !
विरक्ति में है कौन ऐसा जो सानी रखता है गोम्मट से ?
हो सकती है तुलना गोम्मट की किससे ? मुक्ति का यह
द्वार है खुला गोम्मट की कृपा से ! गोम्मट की है रीत
बहुत ही निराली ! मन मेरा जा बसा गोम्मट के चरणों में !
करो हमारी रक्षा पश्चिमांबुधि के समीप ही विराजमान
सह्याद्रिवलय में सुस्थित, हे देव, गोम्ममट स्वामी हमारे ।।

यो श्रद्धा से कर रहे हो चिंतन किस चीज का ?
आशा की लहरों के आघात से मुँहकी हैं खाये हम लोग ।
नज़र थोड़ी सी पडे हमारे ऊपर भी । करोगे नहीं क्या रक्षा
उनकी, मानते हैं जो तुमको आराध्य दैव अपना सदैव ?
तीनों प्रकार की आशाओं के सागर में डूबते जा रहे हैं हम !
इस गरजते सागर से उबारो, हे अधीश पश्चिम सागर के ।।

पुरुदेव है पिता, माता है सुनंदा, अर्धांगिनी है इच्छादेवी;
अग्रज है भरत, छोटी बहिन है सुन्दरी, सुत है महाबलि;
बाहुबलि नाम यह लगता है तुम्हारे लिए अन्वर्थ ही ।
स्मरकलाचाप के आगम के विचार में हो प्राज्ञ सच ही !
फिर भी क्या बात है कि चुपचाप खड़े हो यहाँ अकेले ही ?
समझने में इस बात को हम हैं असमर्थ, हे गोम्मट स्वामी ।।

हरा दिया भरत ने, जगविजयी बनने की महादाशा से,
सब राजाओं को छोड़ तुमको ! उन दिनों के अनंग तुमको
ललकार दिया न उसने पौदनपुर में ! ललकारा था, मगर
हरा सका क्या तुमको ? पराक्रम उस चक्र का हुआ साबित
शून्य समान ही सामने तुम्हारे अनुपम पराक्रम के । होता है न
तृष्णा का फल दुःखद ही सदैव ? हे गोम्मटस्वामी हमारे ! ।।

बाद को हुआ न संपन्न वह युद्ध तीनों प्रकारों में उनके बीच ?
तीनों लोक हुए क्या गूंगे से, चित्रवत् निश्चल हो उस समय !
सागर भी कंपित हो उठा क्या ? धरती पर छा गया क्या अंधेरा !
चक्रि पर हासिल करने पर भी विजय, पछाड़ा नहीं उसको !
बदले में उसके, दे दिया स्नेह में सब कुछ उसको । हे गोम्मट !

सकल भुवन भार को सौंप दिया चक्रि को तुमने;
यों मानकर कि है नहीं कोई प्रयोजन इस जीवन का !
मन के उपराग से हो गये विमुक्त कार्तिकेन्दु जैसे;
और साध लिया परिणय अपना उस मुक्ति ब्राह्मी से ! ।।

बज उठीं महाभेरियाँ देवताओं की; नाचीं और गयीं तब
उत्साह से अप्सराएँ; सुनायी दिया तारक गान नभस्थल से ;
हुई आशिषों की वर्षा भी तब पूजनीय मुनिवृन्द की ओर से;
घिर आए बादल गगन स्थल में, हुई जिनसे वर्षा पुष्पों की ;
" जय हो, जय हो तुम्हारी ! "- यों उसी समय हुआ जयघोष
सहर्ष सुर, असुर, नर और उरग समुदायों की ओर से । ।।

" हुआ था न इससे पहले कभी संपन्न वैभवपूर्ण उत्सव ऐसा !
देखा नहीं था आखों ने ! मिलेगा नहीं अवसर आगे भी ऐसा !
भाग्य यह कैसा कि रात को मिला है सौभाग्य सूर्यदर्शन का !
त्याग बन गया क्या भोग ? उस नाग के जैसे केंचुली जिसकी
उतर गयी हो, बना है यह शोभायमान बहुत ही ! है भी कोई
ऐसा जो रखता है सानी इससे ? " - यों कर रहे थे प्रशंसा उसकी ।।

निकल कर वहाँ से पहुँचे तुम सीधे अष्टापद को, जहाँ दी
तात ने जिनदीक्षा तुमको; प्रतिमायोग में करते रहे तपस्या
इक साल तक ; खड़े रहे वहाँ शुक्ल-ध्यान में तुम ऐसे
कि हो तुम इक और शैलशिखर ही । जा मिले अंत में
उन अमरों के साथ, देख रहे थे जो तुमके अपलक नयनों से ।
छाया अपनी तुम छोड़ गये क्या यहाँ, हे गोम्मटेश ? ।।

दुखी भरत के लिए पौदनपुर में बनाये रखने अपनी याद,
रूप धारण करने की इच्छा से समय की प्रतीक्षा में पड़े

कर्केतनोपल से हुई उद्भूत तुम्हारी प्रतिमा ऊँची-सी ऐसे
होता है जैसे शोभायमान काले बादल खुले आसमान में ।
जानें यह कौन कि सपना कोई तुम्महारा हुआ आप साकार
या वास्तविक चिंतन ने ही ले लिया रूप ऐसा ? हे गोम्मट ! ।।

कुछ समय के बाद कुक्कुट सर्पों के समूह के कारण जब
मणिमय छाया से हो गये आवृत, तो बने तुम कुक्कुटेश्वर !
बादको जब फैल गया बन दुर्गम-सा, करते तुमको
ओझल हमारी आँखों से, अप्सराएँ करने लगीं अर्चना तुम्हारी !
वह जगह पावनमय-सी है कहाँ ? बताओ, हे गोम्मटेश्वर ! ।।

उस दिन पौदनपुर को छोड़कर चले आये क्या तुम
बेळगुळ के इन्द्रगिरि तक, करते कृपा चावुंडराय, के ऊपर,
था जो गंगवंश के राजाओं के यहाँ इक सचिवप्रवर ?
की जब प्रार्थना कार्कळ के बय्यरस वीरपांड्य ने तुमसे,
पधारे क्या तुम वहाँ की शिलावृत पहाड़ी की बढ़ाने शोभा ?
तिम्मरस अजिल के वास्ते आ गये क्या तुम वेणूर की ओर ?
धन्य हैं ये कितने, जिनसमय के उन त्रिरत्नों के जैसे ! ।।

शिला की यह है नहीं कोई गुडिया - हँस भी सकती है
कहीं गुडिया ? घुंघराले बाल भी हो सकते हैं कहीं उसके ?
आवृत या अनावृत हो सकता है कहीं लताओं या सांपों से ?
बल पड़ सकते हैं कहीं शिला में ? निवास भी महिमा का
हो सकता है कहीं कूड़े से पत्थर में ? - बने तुम ऐसे
आश्चर्य की इक चीज़ सब केलिए , हे गोम्मटेश्वर ! ।।

सपना ही साकार हो उठा है क्या इस शिला में ? धरकर
कहीं रूप इस भक्त का, चिकीर्षा भक्ति बन गयी अरूप-सी ?
जैनागम ने ही धर लिया है कहीं रूप इस पुरुष का ?
सृष्टि ने दिया जनम कहीं ऐसी पावन संतान को ? कर दी
क्या धर्म ने स्थापना दीप-स्तंभ को इस रूप में ? - यों
सोचते दांतो तले ऊँगली दबायी लोगों ने, हो अपलक-सा ।

तुम्हारे उन दिनों के मन्मथ नाम से बन चले तुम अप्रतिम !
त्याग भी तुम्हारा है अनुपम ! धरा में यह योग भी है निराला !
तुम्हारी इस महोन्नत शिला प्रतिमा के त्रिगुण भी हैं अपूर्व !
तुलना तुम्हारी की जा सकती है तुम ही से,न कि और किसीसे ! ।

उत्तुंगता भले ही हो – मगर सुंदर लगती है न उत्तुंगता हमको
तुहिन श्रृंग की ? नग्न रहा भी तो क्या ? – नग्नता न हो,
तो लगती है कहीं प्रकृति सुंदर-सी कभी ? मौन भी रहा,
तो क्या हुआ, है कोई चीज ऐसी ? सुन्दरता ही बनती है भूषण-सी
सौंदर्य के वास्ते ! बनती नहीं कोई और चीज उसके योग्य ! ।।

" पांच सौ कमानों से भी अधिक अपनी यह ऊँचाई कहाँ ?
कलिकाल के इन अतिह्रस्व शरीरियों की हस्ति ही क्या है ? "
– यों सोचकर इक सौवें प्रमाण में अवतरित हो गये क्या
उन तीनों मूर्तियों में, बढ़ा रही हैं जो शोभा तीनों स्थलों की ?
की है तुमने यह कृपा बड़ी अनुकंपा से हमारे प्रति
ताकि आ जाये तुम्हारी प्रतिमा सीमा में हमारी आंखों की ।।

यह लता है कौन सी, फूलती है जो सब ऋतुओ में ?
छूने पर भी उनको, फुफकारते हैं क्यों नहीं ये सांप ?
बांबी के ये छोटेमोटे कीड़े हैं जी रहे किस के बलबूते ?
कमल तुम्हारी इस पावन स्थली का मुकलित होता नहीं ,
संध्या के उतर आने पर भी ! बताओ, हे गोम्मटेश !
यह है प्रभाव तुम्हारे तप का या व्रत इस प्रकृति का ?

अग्रज को हुई आशा जगविजयी बनने की; होता है
और क्या, औरों पर विजय साधनेवाले उस व्यक्ति से ?
" जगविजयी वही है, जीत ली है जिसने आत्मा अपनी ! "
–यों सोचकर, जीत के संकेत रूप उस सार्वभौम पद का
कर दिया तुमने त्याग ! ले जा सका वह भी क्या उसको ?
जंग लगता है कहीं सोने को ? धिक्कारते उसको धर लिया
क्या तुमने इस शिलारूप को ? बता, हे गोम्मटेश्वर ! ।।

है कोई शत्रु इस जग में बढकर हमारी इन आशाओं से ?
है कोई पाप इस जग में बढ़कर हिंसा से ? है कोई पद भी

जो होता है इस जग में श्रेष्ठ अपने में अहिंसा से बढकर ?
कुचल दी हैं जिसने आशाएँ अपनी, बनता है वही जगविजयी !
हनन से प्रत्येक पुद्गल कर्म के, क्षीण होते हैं अष्टकर्म !
ये तत्व ही मानों हो चले हैं साकार शिलारूप में यहाँ ! ।।

प्रतिमा योग में हो गये तुम लीन किसी दिन यों कैलास में !
हिसाब रखा भी है किसी ने कि बीत चले हैं साल कितने ?
काफी नहीं क्या इतना ? थकान और सहते हो क्योंकर ?
क्षण भर केलिए भी आराम ले नहीं सकते क्या ? हे गोम्मट ! ।।

धूप से न मुरझाये, सुर्दी से न सिकुड़े, वर्षा से न भीगे
तुम को आशिष भरती हैं चन्द्रमारूपी मंत्राक्षताओं से,
सजाती हैं सूरजरूपी सेहरे से, और उतारती हैं आरती
विद्युल्लताओं से दिगंगनाएँ, मेघदुंदुभियों के बजने पर !
नित्यता-वधू तब झाँकती है परिणय की आशा से तुम से !
आँखे अपनी खोलकर देखते क्यों नहीं तुम उसकी ओर ? ।।

एक मुखवाला है चतुर्मुख, दो आखोंवाला है त्रयंबक !
तुम ही हो सार्थक नाम के भुजद्वय, है जिसने खींच फेंका,
पत्त चीवर भी चतुर्मुख, का; तुम ही हो अमिताभ भी, जिसमें
अर्हंत के सारे लक्षण हैं पाये जाते । तुम ही हो अवतार उसका,
जो मानवरूप में हुआ है प्रकट इस महीतल में ! हे गोम्मट ! ।।

पादत्राण है भूतल ही तुम्हारे पांवों केलिए ;
छाता है आसमान ही तुम्हारे सिर केलिए ;
दिशातल है बना वस्त्र तुम्हारे बदन केलिए ;
करूणाकमंडल है बना इधर हत्तल ही तुम्हारा ;
वामनीति के जीवन से, कुचल डाली है तुमने
बलि चढ़ाने की आशा ! धर्म-विक्रम यह तुम्हारा
फैल गया है भूत, वर्तमान और भविष्य में ! ।।

नयन हैं तुम्हारे द्वार ही धर्म के ! वदन है मायका सच्चाई का !
नासिक है कुठारप्राय विषयासक्ति केलिए ! मुस्कान है यह
पावनकारिणी जाह्नवी के जैसे ! सुविशाल ललाट है तुम्हारा
शांतिमय गगन सा ! तुम्हारा हृदय है आप सागर दया का !

भुजाएँ तुम्हारी बनी हैं प्रतीक अतिशय पराक्रम का ।
सिर तुम्हारा बना है वह निबिड वन परमज्ञान का !
पांव तुम्हारे हैं बने ठौर ऐसे जिनसे मिलती है मुक्ति !
करूँ और क्या प्रशंसा तुम्हारी, हे गोम्मटेश्वर मेरे प्यारे ! ।।

आती है मानवों की संतति यहाँ, चली भी जाती है यहाँ से !
मगर तुम खड़े हो वैसे ही, जैसे खड़े हुए थे उस दिन !
सदा केलिए बने रहो तुम ऐसे ही ! हे द्वितय-महेश इन
कन्नड एवं तौळव देशों के, करो कृपा ऐसी कि रहे
इनमें सदैव स्थिति सुभिक्षा की, हे सह्याद्रि के अधिदेव ! ।।

जानता हूँ कि सपना देखना है बना देता जीवन को शून्य ।
यदि जाग जाऊ तुम्हारी कृपा से, क्या कर नहीं पाऊँगा ?
करूँगा ऐसे कि त्याग से सींचकर मूल को लहलहाऊँ गा
जीवन की लता को । इन्द्रिय सुख को मानकर मृगजल-सा,
सुखा दूँगा उसको, तुम्हारी कृपा से मिले विशुद्ध ज्ञान से !
बिन रीत का ज्ञान बनता है जैसे सपना किसी गूंगे का ! ।।

बना हूँ मैं अकिंचन तृष्णा से, और बन्दी आशाओं का ;
मारे अहंकार के, गूंग-सा बन बैठा हूँ ; बना हूँ दास भी
मात्सर्य का; बना हूँ गुलाम रीझे जाकर कामदेव से;
क्रोध की भी कर रहा हूँ सेवकोई; भरमा गया हूँ आखों से;
अतीव लोभ का बना हूँ गुलाम ! और क्या कहूँ, देव ।
आया हूँ शरण में तुम्हारी; करो तुम कृपया रक्षा मेरी ।।

दानी हो तुम, याचक हूँ मैं । रोड़ा क्या हैं मांगने में
अपनी इच्छा की वस्तुएँ तुमसे ? खिला नहीं देगा क्या
चन्द्रमा प्यार से कुमुदिनी को, और सूरज कमल को ?
कितनी ही बड़ी क्यों न हो संख्या इन याचकों की ?
मिलेगा उनको उतना ही लिखा होता है भाग में जितना !
पूरी करो तुम आशाएँ अवश्य हमारी, हे गोम्मटेश ! ।।

दया के कारन हुआ है जग का उद्भव; क्षमा से संरक्षण ;
सृष्टि का अंतिम संवर्तन होता है शाति में ! तो इन
बातों में रखा है क्या अर्थ-दंडन और दंडक ?

सोचें तो लगते हैं ये सभी कर्म अपने ! साधकर
विजय इन पर, जैसे ऊपर उठा पाते हैं आत्मा को,
गोबर से पाकर पुष्टि लहलहा जाती है जैसे लता,
कर दो मुझको भी योग्य मोक्ष के, हे गोम्मटेश ! ।।

बंधा हूँ जो विशेष रूप से इन कर्मों से, कर नहीं पाता
मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा; कर्मों को है मिटाना !
जब तक हो बाती और तेल, बुझ पायेगा नंदादीप कैसे ?
कच्चे फल को आग की गरमी में रख, पका सकते हैं क्या ?
बिन कठिनाई के कर्म मेरे मिट जाये, ओर कर्मान्त का
वह सौभाग्य मुझको प्राप्त हो अंत में, सब के बाद ही,
करो ऐसी कृपा मुझपर, हे गोम्मटेश्वर, अधिदेव मेरे ! ।।

करो कृपा ऐसी कि विनय से करूँ सेवा सब जीवों की
करो कृपा ऐसी कि जिऊँ, मान सुख-दुःखों को समान !
करो कृपा ऐसी कि तजूँ निंद्य को, और करूँ निष्काम से कर्म !
करो कृपा ऐसी कि मिले मुझे निश्चल भक्ति और संयम !
मांगूँ और क्या तुमसे ? बस, इतनी कृपा करो, हे गोम्मटेश !

करो कृपा मुझपर ऐसी कि खिल उठूँ चरणों में तुम्हारी,
करूँ मैं विहरण नाभि देश में तुम्हारे, पहुँचूँ हाथों तक,
बढाऊँ शोभा तुम्हारे वक्ष की, लग जाऊँ गले तुम्हारे,
बनं जाऊँ चंपक नासिकाग में, पहुँचाऊँ ठंडक माथे को,
नहा लूँ लोचनों में तुम्हारे, झुक जाऊँ भौहों में तुम्हारी !
करो कृपा ऐसी कि मन मेरा करे अर्चना सदा तुम्हारी !

करूँगा वंदन आदिदेव के सुत का, जितचक्रि का, पौदनेश का,
अंतिम देही का, इस चिर युवक का, इस मन्मथविजयी का,
अनंतमोक्षलक्ष्मी के इस पतिदेव का, इस श्यामल मूर्ति का,
बेळगोळ के इस अधीश का, कार्क्ळ के इस अधिदेव का,
वेणूर के इस देव बाहुबलि का, मन की गहराई से सदैव !

करो रक्षा सबकी ऐसी कि बने रहे सब में शौर्य व औदार्य !
बना रहे पुरुषों में सारे प्रेम इस मातृभूमि के प्रति हमारी !

बनी रहे सब लोगों में निष्ठा नीतियों के प्रति निराली !
बनी रहे स्त्रियों में भाव अनन्य पातिव्रत्य का सदैव !
बनी रहे उनमें अचंचल निष्ठा सत्य के व्रत के प्रति !
बनी रहे तुम्हारी संतान में दीधिति आत्मा की, हे गोम्मटेश !

डी. वी. गुंडप्पा

5. श्री गोम्मटेश्वर

नर हो तो क्या ? नराधिपति बने भी तो क्या ?
– इस बसुंधरा में बने परम भाग्यवान, तोड़ डाला जिसने
पाश भी तृष्णा का, और पार कर गये जो आवर्त को कर्म के !
कर दी कृपा सब जीवों पर, शम की दीक्षा का करके दान,
और हो गये जो शोभायमान, अनुपम औन्नत्य से अपने,
और बन गये जो संयमी अकेले, हे श्री गोम्मटाधीश ! ।।1।।

यह तो ठीक है कि जग में है जीना; यह भी ठीक है कि
साधना है सुख को वैभवपूर्ण अवधि में अपने जीवन की;
यह भी ठीक है कि उस साधनोद्योग में है जीतना शत्रु को !
हो न क्योंकर ये लक्ष्य महान भले ही इस मानव–जीवन के
होता है मगर जीत लेना इच्छा को जीवन का लक्ष्य सबसे बडा
मिलता है नित सुख जिससे हमको, हे श्री गोम्मटाधीश ! ।।2।।

भले ही कर दिया था त्याग भोग की इच्छा का और हुए थे
आप मुदित स्वान्तःसुख की दीप्ति से; छोड़ भी दिया था
भावनाओं को राग और द्वेष की, भरकर यों मन में अपने
भावना सन्मैत्रि की, और थे तुम अवस्थित ध्यान में गहरे;
बने तुम योगिवरेण्य एवं कृपानिधान, पहुँचायी सांत्वना
लोगों को इस जग में, धन्य हो तुम, हे श्री गोम्मटाधीश ! ।।3।।

रहे यह बात कि प्रकृति ने किया प्रदान मनुज को अग्रस्थान,
चलता है राज जिसका करोड़ों की तादाद के इन जीवों पर !
कौन है समर्थ ऐसा जो चीर फेंकता है उस मोहजाल को
बिछा देती है महामाया जिसको लोगों की आखों के सामने ?
तुम हो ऐसे जिसने तंत्र से अपने साध ली विजय भी
इस प्रतियोगिता में इकदम अनूठी, हे श्री गोम्मटाधीश ! ।।4।।

बच्चों को पहुँचाने संतोष, खेलती है माता मिलकर उनसे,
सता भी देती है काफ़ी उनको, और देख उनको हार पर रोते,
मुसकान भी भरती है आप; हरा दे यदि कोई बच्चा उसको
कुशलता से अपनी, हो जाती है वह बहुत ही संतुष्ट उससे;
माया को तुमने हरा दिया ठीक उसी तरह त्याग से अपने,
और कि या संतृप्त विश्वविधात्रि को, हे श्री गोम्मटाधीश !।।5।।

भले ही साध ली है कलाएँ कई इस परम वीर ने,
मौन है साधता जिसके लिए है वह सुविख्यात; है यह
भले ही अप्रतिम बाहुबल में, सौम्य है स्वभाव उसका ।
भले ही इसकी सुन्दरता में है निखरा महोज्ज्वल रूप ही,
तृष्णा से है यह अतीत – यों सारे भुवन में हैं करने लगे
प्रशंसा तुम्हारी । अनहोनी यह कैसी, हे श्री गोम्मटाधीश ! ।।6।।

भले ही हुआ धरती में जनम तुम्हारा, पहुँच है साध ली
तुमने ऊँचाई उस हिमालय की; घेर कर तुमको, किया था
भले ही आघात तुम्हारी छाती के ऊपर काले काले बादलों ने,
ऊपर उठते ही गये कि सूर्य भी लग गया तुम्हारे हाथ !
अपनी इस निराली साधना का, पौरुष की इस सीमा का तुम
दे रहे हो परिचय परमोत्तुंगता से, हे श्री गोम्मटाधीश ! ।।7।।

अपने प्रचंड पराक्रम केलिए है सुविख्यात यह चावुंडराय !
बना है जो आदर्श इस लोक में महाकार्य के उपलक्ष्य में !
तुम्हारे आख्यान का प्रचार करने से बन वह भी संस्तुत्य ।
मानवों के मानदंड से परे, प्रकृति के उच्च आशय से ऊँची
– यों तुम्हारी ऊँची प्रतिमा का करके निर्माण, दिखायी उसने
गरिमा तुम्हारे परम अस्तित्व की ही, हे श्री गोम्मटाधीश ! ।।8।।

के. शंभु शर्मा

6. कार्कळ के श्री गोम्मटेश्वर

धन्य हैं वे लोग कर लिये जिन्होंने दर्शन प्यार से तुम्हारे
खड़े हो जो उन्नत शैलश्रृंग पर शिलारूप में कार्कळ में,
पा ली है पावन कीर्ति, जो है उत्कीर्ण लोगों के हृदय में ।
बने हो तुम प्रतीक दक्षिण कर्नाटक के अमर इतिहास का ! ।।1।।

रजतगिरि के ऊपर खड़े हो करते निर्लक्ष्य सर्दी व धूप का ;
अधखुली आँखों से खड़े हो तुम होकर दिगंबर मौनी !
किया है तुमने ध्यान आंतर्य में उस आत्मस्वरूप का !
आसन्नभव्यों ने कर दी उत्कीर्ण प्रतिमा तुम्हारी ! ।।2।।

भूचक्र को जीतते आये अपने विक्रम के दंभ से,
भरत ने जब छेड़दी लडाई तुम कंदर्प से,
दर्शया बाहुबल तुमने, नाम के अनुरूप अपने !
ले सहारा ज्ञान का, पा ली मुक्ति, हे गोम्मटेश्वर! ।।3।।

कहा है लोगों ने कि भव है साररूप; कहा भी है इसको असार;
छोड़ नहीं पाते भोग की इच्छा,रह भी नहीं पाते हम पापजन्मी !
भवसुखसार को यों नश्वर मानकर, कौन है ऐसा जिसने
अपना लिया है नित्य और निर्भव सुख तुम जैसे ! ।।4।।

रागी होकर कर नहीं पाते भोग, और निरागी हो,
कर नहीं पाते अध्यवसाय आप उस योग का भी, तुम जैसे !
रागियों में तुम हो अनुभोगी भोग के, हे कामदेव निराले !
त्यागीयों में तुम बने हो सचमुच अनुयोगी योग के ! ।।5।।

तज दिया था तुमने सुखविहीन इस भव को,
जला दी थी अघराशि भी तुमने और कर दी थी प्रोज्ज्वल
तप की शिखा भी तुमने, देख इस महाद्भुत दृश्य को
इस जिनालय में, रह गये अचंभे में चतुर्मुख भी ! ।।6।।

'इक जैन महिला ', नेल्लिकारू

7. गोम्मट जिन

मेल खा सकती है कोई चीज इस दुनिया में
तुम्हारे इस तप से, वैराग्य से, दृढ़ धैर्य से,
और तुम्हारे इस अनुपम महात्याग से !
राजा होकर भी त्याग दिया तुमने मान तृणसमान
उन सारे राजभोगों को और आ खड़े रह गये
पहाड़ की इस चोटी पर ! त्यागी हो कैसे, हे गोम्मटदेव ! ।।1।।

न डरे बिजली से, न गाज से, न बरसा की
अजस्रधारा से, हड्डियों में चुभती ठंडी हवा से सर्दी की !
थी वह धीरता कैसी ! वह सामर्थ्य भी कैसी तुम्हारी !
दृढरूप में आ खड़े रह गये जो इस बृहत-शिला पर!
समझ क्या सकता हूँ मैं इनको, हे गोम्मट देव ! ।।2।।

किया दंडन देह का, मिटा दिया इकदम सारे कर्मों को ;
कर दिया चकनाचूर प्रबल मोह के उस महाद्रि को !
यमराज को ले आड़े हाथों और कर भंजन पापारि का,
पा लिया था जो मुक्तिराज्य, सता पायेंगे कैसे तुमको
ये ताप सारे ? कर रहे हो क्यों कर विलंब इतना!
कृपा कर इस बेचारे पर! करो उद्धार, हे गोम्मटदेव ! ।।3।।

के. एस. धरणेन्द्रय्या

8. स्तवन श्री गोम्मटेश्वर का

भूमंडल को जीतकर आये अग्रज की ओर से
आया जब अति वेग से चक्रायुध अपनी ओर,
पलके भी न मूंदकर क्षण भर केलिए अपनी,
किया निर्लक्ष्य उसका ! सुशोभित हुए इधर
उज्जवल कांतियुक्त पुण्यमूर्ति यह बाहुबलीश !

लीला से नाचते आकर आलिंगन कर लिया
जब जयवधू ने रंणरंग में बाहुबलि का,
रीझ न गये तब उस पर; मान उसको वेश्या
गुणवान बाहुबलि ने तज दिया भूमंडल को !

पौदनपुर में कर रहे थे सबके सब प्रतीक्षा
मदन-विजय के उत्साह में! गया क्या वहाँ ?
तज कर निज नगरी, साध ली उसने तपस्या,
आज्ञा के अनुरूप तब अपने उस तात की!

तीनों लोकों से वंदित उस बाहुवलि देव ने
तज दिया कांच की गिरि के जैसे उस
संपत्ति को, आश्चर्यपूर्ण श्री लगती जो अपने
तेज में, रूपरेखा में और लावण्यराशि में।

सुनी क्या बातें भरत की ! लौट भी आये क्या
तपस्या से, रोकने पर अपनी रानी के! बदला
क्या उसने निर्णय अपना, सुनकर रोना-धोना
अपनी माता का और प्यारे लाड़ले का अपने ?

तज दी उसने संपत्ति दुनिया में सबसे बड़ी,
करके न लक्ष्य दुःख अपनी प्रिय पत्नी का;
चिलचिलाती धूप को सौंपकर शरीर अपना,
करके उसको संप्राप्त कष्ट भाँति-भाँति के,

हटाकर अपने से दूर सुख-सौभाग्य अपने सारे,
ढूंढ रहे हो क्या तुम उस मुक्ति-रमणि को
जिसको ढूंढते रहते हैं निगमकोविद सारे?

गगन को चूमनेवाले तुम्हारे इस श्रीशार्ष के
खिलने पर आप खिल उठती हैं आखें जग की;
हे अघहर! कर रहे हो ध्यान और किसका?
घेर लेने पर भी लताओं के, लोटने पर सांपों के
बदन के ऊपर अपने, भागे नहीं तुम वहाँ से !
बता, हे ज्ञानी ! ध्यान कर रहे हो किस चीज़ का?

याद कर रहे हो श्री-संपत्ती अपने उस घर की?
याद कर रहे हो राज करने के अपने ढंग की !
बता रहे हो कि जुगनू जैसी है संपत्ती मानव की?
हे उदात्त ! बताओ, यह मौन भी है कैसा तुम्हारा?
तन को सताने का यह ढंग भी है कैसा तुम्हारा?
हे चिन्मय, कृपया बता दो हमको, हे बाहुबलि!
तप में निरत होने से पहले क्योंकर तुमने
किये समर्पित कुपित कार्य वे अपने सारे?
अपर-सुख के हेतु भुला दिया क्या बंधुओं को?
भुला देते हैं कहीं भलाई करने वालों को भी ?
सह भी लेते हैं कहीं उपद्रव ये इतने सारे ?
बता वह मंत्र है कौन सा, कर रहे हो जप जिसका ?

लो, आ रही है रोती हुई यह माता तुम्हारी!
लो, आ रही है अति व्याकुल प्रेमिका तुम्हारी!
ढूंढ रहा है कमल-नयन यह लाड़ला तुम्हारा!
हे देव! खोलकर आखें अपनी, कर दो प्रदान
अभय उन लोगों को, मानते हैं जो प्रभु तुम्हें!
बताओ उनको रीत-नीत उस माया तत्व की!

हे प्रभु, बिखरी है जी थोडी सी यह मुस्कुराहट
चेहरे पर तुम्हारे, है वही उत्तर मेरी पुकार का?
रोशनी से उस मुसकान की मिट गया अंधेरा!

संत्रस्त हैं, हे प्रभु, हम लोग इस भव में अपने,
अवगत न होने के कारण, सत्य की रीत से!
दर्शन से तुम्हारे दिखाई पड़ा मार्ग अभ्युदय का!

सच्चाई है अवश्य, हे प्रभु, यह मुस्कुराहट तुम्हारी;
सह नहीं पा रह हूँ मैं संकष्ट इहलोक का;
महिमा है इस लोक की, सपनों की संपत्ति जैसी;
करके वर्जन सांप के इस विष का, पा ली तुमने
सहनशीलता से अपनी वह मुक्ति, बनी है जो
खान के जैसे महिमा के अर्थ, हे बाहुबलि मेरे !

धन्य है वह चावुंडराय, हे प्रभु, पा ली जिसने
मान्यता सारे जग में अपने सत्कार्यों से कई!
उन्नत है, सज्जन है, और धर्मधुरीण भी वह;
करके प्राप्त चांदनी जैसा यश वह अपने लिए,
रख लिया उसने अपने लिए सुन्दर नाम गोम्मट का,
करते नित पादपूजा सन्मुनीश उस नेमिचन्द्र का।

नाम पड़ा बाहुबलि का आप गोम्मटेश, साहसी
चावुंडराय नाम के उस भक्त के प्रयत्नों से !
बेळगोळ की यह प्रतिमा है मोह लेती जनता को ।
मुक्तिश्री को पा लेने की है यदि इच्छा मन में
स्नेह भी बढ़े यदि सिद्धों के बीच अपने लिए,
करें ध्यान भुजबली का, पाने विजय कर्मयुद्ध में ।

कम्मत्तहळिळ जीवण्ण विद्वान

9. स्तुति श्रवणबेळगोळ के गोम्मटेश्वर की

भगवान श्री आदिनाथ जी के ये सुपुत्र
भगवान गोम्मटेश जी हैं खान सौंदर्य के।
पहाड़ पर हैं वे खडे इस बेळगोळ में
करके समावेश सौम्य शांति का अपने में।

कन्दर्प के समान ये देव हैं खड़े मुस्कुराते
कि कोशिश है क्यों कर रही यह जनता
निभाति देह के व्यापार इस प्रकार जग में ?
पायेगी भी कैसे यह जनता अनुपम सुख?

बाज़ आकर इस लोक के इन व्यवहारों से,
प्राप्त कर ली मुक्ति तपस्या से इस प्रकार!
शायद दुनिया को यह बताने के वास्ते ही
खड़े रह गये लोक के इस समुन्नत मंच पर!

तजकर इकदम इस लोक के व्यापार को,
करके यह निश्चय कि लोक को रौंदने
अपने पैरों तले अकेले ही आप खड़े रह गये;
लगता है ऐसा कि घटी है यह घटना आज ही!

भले ही आपने हरा दिया चक्रवर्ती को, और थे
आप चक्रवर्ती, हे भुजबलि, पराक्रमी, तज दिया
आपने मोह चक्रवर्ती के पद का, और कर दिया
अपने को अर्पित, हे त्यागी, तपस्या के अर्थ !

आँखें हैं आपकी, हे प्रभु, रवि और शशि के जैसे;
विशालकाय है आपका गगन के आंगन के समान;
रंध्र आपके अंगों के बीच के लगते हैं तारों जैसे;
तो है न आप ही इक ज्योतिर्लोक अपने आप में !

तपोनिधि हैं आप, और निधान भी परमतत्त्व के;
सुपवित्र हैं, दोषदूर हैं और संयमी भी सचमुच!
सफल होता है सदैव ध्यान करना आपको लेकर!
हे गोम्मटेश्वर, आप हैं वर उस अपवर्गनितंबिनी के!

विश्व का भरण करने के वास्ते ही आपने
ले लिया है यह आकार इस विश्व का, हे देव!
करेगा क्योंकर नहीं आशा आपकी ओर से यह
विश्व अपने लिए सुख, शान्ति और समृद्धि की!

दर्शन करनेवालों को करते हैं आप आनंद को प्रदान!
दर्शन करनेवालों को करते हैं आप आस्तिकत्व भी प्रदान!
दर्शन करनेवालों को करते हैं आप वैराग्य भी प्रदान!
दर्शन करनेवालों को करते हैं आप सुख-शान्ति भी प्रदान!

देख लेने से आपको पायेगी यह जनता जरूर
सत्य, त्याग, संयम और सत्रुत आत्मज्ञान तक!
आपके आदर्श से हो जायेगा हमको ज्ञान ज़रूर
इन सब का, हे जिनेश! हे गोम्मटेश्वर हमारे!

विजय पा ली आपने उन आठ कर्मों के ऊपर;
और करके उत्थान धर्म का, पा लिया मोक्ष भी!
करें कृपा हम पर, हे निर्मलचित्त, हे जिनधर्मी,
हे सुप्रेमी मानवसमुदाय के और गोम्मट महाकाय!

है इस शांति में साकार हुई अमरसौम्यता जग की!
या आनंद की निधि अमिटनेवाली हँसी की!
या मायका ही ध्यान का या महानता निराली!
महत्ता भी साकार हो उठी है इस पहाड़ी में यहाँ !
या मौल्यों का निधान हैं जो उत्थित रूप में खडा !
निर्मलता है यहाँ समाविष्ट जप के रूप में निराले ।
-यों विशिष्ट रूप में हैं दिखाई दे रहे हमको
श्री गोम्मटेश्वर, बने हैं जो अधिदेव श्रीक्षेत्र के !

कामदेव हैं, सुरूपवान हैं जिनको देखने की करते हैं
कामना हर कोई; कामारि भी हैं और सुदेव भी;
करते हैं आप हम सबको कामितार्थ सभी प्रदान।
नम्रता से इस मंगलमूर्ति गोम्मट का करूँगा नमन !

शेषाद्रि

10 स्तवन श्री गोम्मटश्वेवर का

लताओं से आवृत होकर खडे हो, हे गोम्मटदेव हमारे।
मल्लिकायतनेत्रवाले हो तुम, हे सुन्दररूप के देव हमारे !
भले ही हो तुम महामल्ल, तुम हो ज़रूर परमशांतमूर्ति !
शिला जैसे तुम हो सुस्थिर और लोकपूजित मूर्ति भी !

सुन्दर भी हो तुम कैसे?
त्यागी भी हो तुम कैसे?
कर दिया जो त्याग तुमने
सारे साम्राज्य का संतोष से !

विरागी हो, त्यागी हो, देवों से वंदित भी हो तुम !
रागरंजित हो तुम, मोक्षदायक हो तुम और आदर्शजीवि भी !
निराशा की जिन्दगी है बनती सुखांत मुमुक्षु के विषय में !
निरूप भी हो तुम, और बने हो जीवन का प्रदीप भी तुम !

सृष्टिमाता की सुवृष्टि का
सुक्षेत्र है यह बेलगोळ !
की जा सकती है तपस्या
यहाँ संतुष्टि और सुख से !

सहमत से हैं जीते हम लोग !
लक्ष्य है गोम्मट देव ही हमारा !
प्रेम से कृपया करो रक्षा हमारी !
ताकि फूटे फव्वारा निर्मल प्रेम का !

एस.पी. पण्णा

11. श्री गोम्मटेश

हे सुत पुरुदेव के, हे गुणों के सागर !
हे बालचन्द्र, वरतेजोरत्न और तिमिरारि !
हे शुभातिकाय, सुर-राज-पूजित, महात्मा !
हे भवादिशून्य, हे श्रीमान, हे देव, करूँगा मैं
प्रणाम तुम्हारे चरणों में, हे गोम्मटेश मेरे !

हे तुंग-अंगशोभित, हे सुलक्षण्मूर्तिराज !
हे श्रृंगारवर्म, हितसागर और सौम्यरूप !
हे रागादिवर्जित, सद्गुणियों के हितकारी !
हे शान्तभाव से विराजमान जिनदेव हमारे !
करूँगा प्रार्थना मनोनुराग से, हे गोम्मटेश !

अज्ञातकर्तृक

12. बेळगोळ–प्रस्थानगीत

जय हो स्वामी जी की !
जय हो अर्हंत नेमि जी की ! ।।ध्रुवक।।

दस हाथ लंबी पुस्तक है हाथ हमारे ।
गा उठें यह गीत आदि से अंत तक।

छः हाथ लंबा पंचांग है हाथ हमारे।
गा उठें यह गीत आदि से अंत तक।

बीस हाथ लंबी पुस्तक है हाथ हमारे ।
पढ़कर सुनायेंगे यह गीत अंत तक ,
ताकि चोटी तक पहुँचकर बेळगोळ की
पहाड़ी की, लौट आ सकेंगे आप लोग।

चालीस हाथ लंबा यह पत्र है हाथ हमारे।
पढ़कर सुनायेंगे यह गीत अंत तक,
ताकि चोटी तक पहुँचकर बेलगोळ की
पहाडी की, लौट आ सकेंगे आप लोग।

याद हो आयेगी यदि इक्कीस गीत मुझको
बिना किसी भूल–चूक के, तो चढाऊँगा
अभिषेक दूध का, मेरे स्वामी को महान !

याद हो आयेगी यदी इकसठ गीत मुझको,
बिना किसी भूल–चूक के, तो चढ़ाऊँगा
अभिषेक घी का, मेरे स्वामी को महान !

सुनने की यदि करें इच्छा आप हम से,
और न सुनायें हम, तो होगा वह पाप;
सुनते और याद करते जिनों को हम,
पलके यदि बंद कर लें भक्ति के आवेग में,

तो होगा उसी क्षण उच्छेद सब पापों का !
बेळगोळ का रास्ता है इकसठ दिनों का,
चलें यदि इस यात्रा पर पैदल ही आप ।

चलें यदि नवविवाहिता को छोड़, और
छोटे–छोटे बच्चों को भी छोड़कर घर में,
तो निकलेगा फल क्या ऐसी यात्रा का ?

इकसठ दिनों का फासला तय करें यदि आप
पैदल ही अपने बाल–बच्चों के साथ, तो
मिलेगा पुण्य–फल आपको ऐसी यात्रा से।

रजस्वलाओं को या रजोदिन जिनके निकट हो
ऐसी महिलाओं को छोड़ आयें मायके में उनके ।

इस बहाने कि धूप है बहुत कड़ी, सोचें यदि आप
रुकने की छाया में किसी पेड़ की, तो निश्चय ही
लगा जायेगा पाप आपको, गोम्मटदेव की कसम !

इस बहाने कि पाँव अपने बहुत ही थक गये हैं,
सोचें यदि रुकने की छाया में किसी पेड़ की,तो
लग जायेगा पाप निश्चय ही आपको, जिन की कसम !

****

मत कहिए कि थक गयी हैं, और दुख रहे हैं पाँव !
आयी तो हैं, हे कन्याएँ, पैदल ही आप, तो
लौटेंगे हम दर्शन करके ही गोम्मटस्वामी के ।

देख आयेंगे बेळगोळ नाम की उस नगरी को,
चढ़ायेंगे स्वामी के चरणों में दूध और फलों को,
और लौटेंगे दर्शन करके ही श्री गोम्मटस्वामी के ।

मत कहिए कि थक गयीं हैं, और दुख रहे हैं पाँव;
इस दूरी को , हे कन्याएँ, तय कीजिए पैदल ही आप !
ताकि देख पायेंगे हम बेळगोळ नाम की नगरि को।

बुलायें न यदि उनको, जिन्होंने प्रकट की थी
इच्छा यात्रा में शामिल होने की, लो लग जाता है
निश्चय ही पाप आपको, गोम्मटदेव की कसम !
साथ लीजिए उनको और करते सुमिरन जिनदेव का,
लौटिये आप करके दर्शन बेळगोळकी चोटी के !

ठान ली हो जिन्होंने बेळगोळ की यात्रा करने की,
यदि न बतायें औरों को, लगेग्रा निश्चय ही पाप;
बताते औरों को, और करते सुमिरन जिनदेव का,
लौट आइये करके दर्शन बेळगोळ की चोटी के !

हों पास आभूषण जिनके, तज दें वे गर्व उनका,
कर दें ऐसे आभूषण हवाले ओरों के तब तक
लौट आयेंगे नहीं जब तक करके दर्शन उस
पहाड़ की चोटी के, है जो बेळोगळ में स्थित ।

बालबच्चे हों जिनके, तज दें वे आस तब तक
उनकी जब तक लौट नहीं आयेगें इस यात्रा से;
कर दे ऐसे बाल बच्चों को औरों के हवाले तब तक
लौटे आयेंगे नहीं जब तक करके दर्शन स्वामी के।

पत्नी हों जिनकी, तज दें वे आस अतीव उनकी,
और सौंप दें उनको बंधुजनों के हवाले तब तक
लौट आयेंगे नहीं जब तक करके दर्शन स्वामी के ।

धर्म के अनुयायी हुए हैं जो, रखें आप इक ब्रत,
यह ब्रत फल और मीठा न खाने का तब तक
लौट आयेंगे नहीं जब तक करके दर्शन स्वामी के ।

सुनिए ज़रा, हे नारी लोग, रखें आप इक ब्रत,
यह ब्रत सुस्वाद और नमकीन वस्तुएँ न खाने का,
लौट आयेंगे नहीं जब तक करके दर्शन स्वामी के ।

पहुँचकर सन्निधि में देव की, मंगाकर रस्सी कहीं से
सीढी उन्होंने रचा दी लंबी इतनी कि आसमान को छू गयी;
सीढ़ी यों बनाकर गोम्मटेश्वर के वास्ते, करवा दिया
उन्होंने सानंद अभिषेक श्री गोम्मटेश्वर स्वामी का ।

गोवा राज्य से मंगाकर झूला लगाने योग्य रस्सी,
रचा दिया उन्होनें झूला आसमान तक पहुँचनेवाला;
झूले को चढ़ाकर भक्ति भाव से, करवा दिया तब
उन्होनें सानंद अभिषेक श्री गोम्मटेश्वर स्वामी का ।

गेरुसोप्पे में से मंगाकर झूले के योग्य रस्सी विशेष,
रचा दिया उन्होने झूला आसमान को छू जानेवाला ।
झूले को चढ़ाकर जिन की सेवा में, करवा दिया तब
उन्होंने सानंद अभिषेक श्री गोम्मटेश्वर स्वामी का ।

झूला रचाकर मनौति में, करवा दिया लो अभिषेक भी
श्री गोम्मटेश्वर का; चढ़ा दीं सभी मनौतियाँ लोगों ने ।

दादी माँ के घर से खरीदकर दूध और दही के भांडे
करवाया अभिषेक इतना कि बह चली नदी उनकी ।
दूध और दही की नदी बह चली वहाँ तब ऐसे कि
धो डाला उसने इकदम बाग बरगद का प्रवाह से अपने ।

अभिषेक घी का शायद आया नहीं पसंद स्वामी को,
यों सोच किया जब अभिषेक दूध से, बह चली
तब धारा दूध की, कहूँ क्या महिमा इस देव की !

अभिषेक फलों के रस का शायद आया नहीं पसंद
यों सोच, किया जब अभिषेक नारियल के पानी से
बह चली तब धारा नारियल के पानी की अविरत ।

धारा नारियल के पानी की बह चली तब अविरत
आखों के सामने हमारे इस देव की, कहूँ और क्या ?
बाग नारियल के सारे रह गये सिंचित तब उससे ।

धारा दूध की बह चली तब वहाँ से ऐसे कि
बाग केले के हमारे स्वामी के रह गये सिंचित ।

अज्ञातकर्तृक

13. मंगल सुप्रभात का

पौ फटा है, उठो ! पौ फटा है, उठो !
बेळगोळ के स्वामी के कमल जैसे
पादयुग्म के दर्शन कर लो, हे भव्य ! ।। ध्रुवक।।

भाग चला है अंधेरा; और कामुक हैं
दिल हार बैठे; बह आ रही है धीरे से
ठंडी हवा के झोंके; प्यार से हैं लगे
लहलहाने कमल के फूल तालाब में;
सर उठाकर बाँग देने लगा है मुर्गा ।।1।।

आँख मूंद ली कुमुदिनी ने; और गा उठा
कोयल मधुर स्वर से; समा गयी मैदान में
अमृत-किरणें; झेंकार के साथ ही भंवरों के
हो चले तारागण आँखों से तब ओझल।
द्युमणि चढ़ आया उदयगिरि के अग्र में ।।2।।

कलियाँ हैं खिलने लगीं; कूजने लगी हैं
पंछियाँ कई इक साथ; हो रहा है मिलन भी
मिथुनों का चक्रवाक के; जिनालयों में इधर
बजने लगे हैं शंख; जाग उठो अभी
कि गोमटेश ही प्रदान करते हैं शरण ।।3।।

बुधजन हैं गाने लगे गीत सुप्रभात के;
मदनारि भव्य जन हैं लगे अध्ययन में;
ऋषिजन हैं डूबे हुए विदित-अध्ययन में;
उठो, हे भव्य ! लेटे मत रहो मदमत्त होकर ! ।।4।।

पंडिताचार्य कुल स्वामी के नाम से विख्यात,
भूमंडल में बहुत ही सम्मान के योग्य बने
बेळगोळ के शिखर पर खड़े हुए हैं जो
श्री गोमटेश, उनके पादपुंडरीक में रखकर
भरोसा बनो सुखी इस जग में, हे भव्य ।। 5।।

अज्ञातकर्तृक

14. गीत गोम्मटेश का

फूला न समाओ हे मानव ! फूला न समाओ।
चला कर विनय से और गाओ गीत गोम्मटेश के !

भक्ति में हैं आप यह स्वामी हमारे इंद्र के समान;
शक्ति में हैं यह स्वामी हमारे भुजबलि के जैसे;
विरक्ति में हैं यह स्वामी हमारे स्वर्णभद्र के जैसे
युक्ति में हैं आप यह स्वामी हमारे अभय के समान
विभव में हैं आप यह स्वामि हमारे भरत के समान
उक्ति में हैं आप यह स्वामि हमारे उरगेन्द्र के जैसे ।

ज्ञान की गुप्ति में हैं यह स्वामी हमारे गौतम वारिषेण ही;
निश्शंका में हैं यह स्वामी हमारे ललितांग के जैसे;
वात्सल्य में हैं यह स्वामी हमारे वज्रकुमार ही;
मर्त्य-नून मार्ग के प्रभाव में हैं आप विष्णुमुनि के जैसे ।

सच्चाई में हैं आप यह स्वामी हमारे धर्मपुत्र के जैसे;
संपत्ती में हैं यह स्वामी हमारे उस कुबेर के जैसे;
अनुग्रह में हैं यह स्वामी हमारे उस सुग्रीव के समान;
बल में प्रत्यंत भूभुजों के, हैं आप वीर अर्जुन के समान,
कौन हैं ऐसे इस दुनिया के राजाओं में इनके समान ?

रव्यति मैं हैं यह स्वामी हमारे दानवीर कर्ण के जैसे;
रीत में हैं यह स्वामी हमारे उस मन्मथ के समान;
नीति में हैं यह स्वामी हमारे उस बुद्धिसागर के जैसे;
प्रीति में हैं यह स्वामी हमारे उस हलधर के समान ;
वार्तालाप में हैं यह स्वामी हमारे बृहस्पति के समान;
अतिशय दान में हैं स्वमी हमारे उस श्रेयांस के जैसे !

भक्ति में और शक्ति में, युक्ति में और विभव में,
उक्ति में और श्रीरूप में, नय में व वीरगुप्ति में,
त्याग में और रव्याति में-बताओ हे पागल! कहीं
सानी रखते हो तुम हमारे इस बाहुबली स्वामी से?
तजकर अहंभाव अपना, करो सुमिरन गोम्मटदेव का!

15. सोडंकूरू तिरुमलेश्वर भट्ट

श्री गोम्मटेश कार्कळ के

ऊँची पहाडी के ऊपर, शिलाखंड में उत्कीर्ण
काव्य के जैसे लगते गोमटेश्वर की यह मूर्ति
आकृष्ट कर नहीं पाती किसको कलाकौशल्य से अपने?
चित्त मेरा बनकर भ्रमर, विहरण करता है इधर
पादकमलों में तुम्हारे; और आगे चलकर मुखचन्द्र में
रस लेता हैं आप चकोर के जैसे सानंद प्रति क्षण में !

मानों शान्ति ही धरकर रूप कला का बिखेर रही है
कान्ति यह नई ! या वैराग्य ही रूप लेकर इस मूर्ति का
पहाडी की चोटी के ऊपर आ बसा हो, तजकर संसार को!
भरम ऐसा पैदा करने में है समर्थ यह शान्तिमूर्ति आप!
सर्दी और धूप, वर्षा और हवा-इन सबका करते सामना
खडे हैं वैराग्यनिधि! वह नर ही धन्य है करे जो सेवा इनकी!

जानु तक आ पहँचनेवाली बाहुओं से हैं आप सुशोभित !
सूर्यसमतेज से है यह मुखमंडल है आपका प्रदीप्त!
मौनमुद्रा है बढा रही शोभा इस दिव्यमूर्ति की!
तज दिया है उन हीन विषयासक्तियों को, बनती हैं
जो रोड़ा तप के मार्ग में; विजय भी साध ली है
इन्द्रियवितानों पर; और कर लिया वरण निर्वाण का;
-यों जगतीतल में महावीर बने हैं गोम्मट धीर भी कैसे!

बादलों का यह समूह है कुटिल कुंतल उसका, जिसको
उखाड़ फेंक दिया है गगन में; अमरापगा गंगा है आप
वह दुकूल जिसको उतार फेंका है इसने; सूर्य-चन्द्र हैं
रत्नाभूषण जिनको निकालकर फेंक दिया है इसने!
- यों वैराग्य का सदैव दे रहा है उपदेश यह गोम्मट!

समझ पा सकेंगे कैसे ये मूढात्मा अनंत महिमा तुम्हारी?
जियेंगे देवों के वैभव से वे मनुज पूजते हैं जो तुमको!

होती है वर्षा जो घी की, तुम्हारे मस्तकाभिषेक के समय,
बिराजती है विद्युल्लता के जैसे ! उन सुवर्ण कलशों से
की जानेवाली वर्षा दूध की लगती है वर्षा-सी चांदनी की !
सवन-धारा जल की मिलती है, छाती से प्रपात के जैसे
उतर आती जलधारा से! मोतियों की वर्षा तो लगती है
सुमवृष्टि-सी, की जा रही हो जो देवताओं, की ओर से !

पिछले मस्तक सवन काल में की गयी थी जो वर्षा
जल की, सूखा नहीं है वह अब तक; और ले लिया
उसने रूप राम-सरोवर का जो भरा रहता है सदैव
सागर के जैसे ! लाल कमल और श्वेत कमल वहाँ के
प्रतीक हैं बने सोने और चांदी के आभूषणों के !
शैवाल है वहाँ का लगता है मुझको मरकतवेदी के जैसे !
करूँकैसे मैं बखान उस महामस्तकाभिषेक का !

अभिषेक में वर्षायी दूध की धारा, प्रदक्षिणा करके,
रुक गयी लेकर इक मंडल का आकार उसी समय,
धरती को समेटकर अपने आंतर्य में; मथन करने
क्षीरोदधि का, देवताओं ने ला रखा हो मंदरपर्वत को
-ऐसी लगती तुम्हारी दिव्य मूर्ति का करूँगा नमन
भक्तिभाव से आज ताकि करो रक्षा तुम सदैव मेरी!
है कौन तुम जैसे इस लोक में, हे गोम्मटेश कार्क्ळ के ?

भास्कर भंडारी मजिबैलु

16. गोम्मटेश्वर

गोम्मटेश्वर है क्योंकर खड़ा कार्कळ की सीमा में,
श्रवणबेळगोळ में और उस महानगर वेणूर में?
-इसका करूँगा आज मैं निरूपण विस्तार से ।

नाभिराज थे पहले, राज कर रहे थे अयोध्या में,
काफी वैभव के साथ; विराजे बादको तनूभव उसके
वृषभ नाम के, बने जो आदि तीर्थंकर जिनसमय के।
उसके हुए भरत और अन्य सौ पुत्र अति महान!

राज किया उसने कई सालों तक इस प्रकार
सुख से रखते अपनी प्रजा को; बाद को बुलाकर
उन दोनों बालकों को, रचाया उसने राजतिलक उनका ।
वैराग्य की भावना जब बढ़ी, किया उसने तब प्रस्थान
बनकी ओर, जहाँ करने लगे तप साथ अन्य बच्चों के ।

अग्रज भरत करने लगा राज अयोध्या नगरी में;
तो अनुजश्रेष्ठ भुजबली बने युवराज, करते राज
पौदनपुर में, मानते इक दूसरे को समान अपने से।
परम तेजोमय वे दोनों करते थे राज बड़े वैभव से ।

भरत हैं श्रेष्ठ सबसे, की है जिसने प्राप्त कीर्ति महान !
-यों जब कहा जाता, " हैं भुजबली किसी से कम नहीं !"
निकलती थी घोषणा ऐसी पक्ष में उस अमितकीर्ति के ।
कमी यह खटकने लगी भरत के मन को तब से कि
"सम्मान है जो उचित, देता नहीं क्योंकर यह मुझको ?

इन चक्रवर्ती-भाइयों के बीच, मन की ममता ने
धर लिया तब वक्र रूप, और बढ़ चला कालचक्र ।
कहूँ और क्या ? हुआ उद्भव चक्ररत्न का इक दिन

आयुधागार में चक्रवर्ती के । बादको त्रिलोक में
भरत ने किया संस्थापित अपने अपूर्व विक्रम को ।
उस चक्रनत्न को आगे करके, निकला संतोष से
वह चंड पराक्रमी, अपनी सेना के साथ, उसी दिन
साधने दिग्विजय । कायर सभी, मारे डर के,
हो गये नतमस्तक सामने उसके, सौंपते नजराना ।
किया जिसने प्रतिरोध, हराया उसको अपने बल से ।
-यो तीनों लोको में अपनी विजय को किया संस्थापित।

यों चक्र की महिमा से जीत लिया तीनों लोकों को ।
मारे इस खुशी के जब वह लौट रहा, कहूँ क्या,
घटी इक अन्होनी-सी घटना । द्वार पर आकर
उस पौदनपुर के, रुक गया इकदम वह चक्ररत्न,
डालते उस वृषभसुत को चिन्ता में कारण के प्रति!

"जब तक अनुज भुजबलि आकर, नहीं करते प्रणाम,
और करते नहीं भेंट नज़राना, मान तुम्हारी विजय को,
बढेगा नहीं आगे यह चक्ररत्न; और मिट जायेगी
ख्याती तुम्हारी; सोच गंभीरता से इस विषय में ।"
- यों उसके सचिवों ने बताया कारण उस घटना का !

"हे चारकों ! जाकर बतायें आप अनुज भुजबलि को;
करे आकर वह मुझको प्रणाम और सौंपे नज़राना !"
जाकर बताया उन्होंने विनय से यह संदेश उसको ।
" करूँगा प्रणाम उसको, अग्रज मेरे होने के नाते !
झुकूँगा नहीं मगर उसके सामने विजयी होने के नाते !
करूँगा नहीं नज़राना भी उसको भेंट इस उपलक्ष्य में !"

प्रत्युत्तर भुजबलि का सुना दिया चारकों ने भरत को।
सुन असम भुजबलि की अति साहस की वे बातें
आग बबूला हो उठा वह महीपति, और ललकारा उस
असमभुजबलि को करने सामना युद्धरंग में उससे!
फैल गयी यह वार्ता उस राज्य की हर एक दिशा में!

भाइयों की कर्कश लडाई हो जायेगी ज़रूर हिंसात्मक !
-यों सोच सचिवों ने ढूंढ निकाला मार्ग अहिंसात्मक ।
कहा उन्होंने कि पहले हो जाये दृष्टियुद्ध, और बादको
जलयुद्ध और अन्त में हो जाये मल्लयुद्ध आपस में।

बिना कठिनाई के जब भुजबली ने जीत लिये
दृष्टियुद्ध और सभी युद्ध, आपे से हो बाहर, मारा
अग्रज ने चक्ररत्न से ! हुआ तब बाहुबलि को
यह स्पष्ट कि मनुज को दुष्ट कैसे बना देता है
यह राष्ट्रलोभ ! और चिन्ता में हो गये आप निमग्न!

"इस कारन कि किया नहीं मैंने प्रणाम अग्रज को,
रुष्ट होकर मारा उसने चक्ररत्न से, अहंकार के मारे,
व्याध के जैसे ! होता है यह सब राज्य के लोभ से !
इसलिए होता है यही उचित कि तज सारे सुखों को,
उग्र तप के सहारे प्राप्त करूँ मोक्ष को, तो धन्य होगा
जीवन मेरा !"- यों सोच लिया तब बाहुबलि ने।

यों सोचकर पहुँच गया वह चोटी पर पहाड़ की
और करने लगा तपस्या गंभीर भक्तिभाव से वहाँ
हजार वर्षों तक, और प्राप्त कर लिया मोक्ष उसने!
उस धीर बाहुबलि की आज भी लोग करते हैं पूजा
वीर गोम्मट देव के नाम से और बड़े सम्मान से!

डी. एस. कर्की

17. कला स्फूर्ति

इधर,उधर और हर कहीं विशेष रूप से
प्रतिष्ठा है प्राप्त की बाहुबलि ने ऐसी,
मानों खिल उठा हो स्मृति में सपना सुनहला!
उसकी उन्नति से कंधा मिलाते मिलाते
पहुँच पाई है यह कला भी उस ऊँचाईतक;
संतृप्त हो खड़ी है वह मूर्तिमान होकर! ।।1।।

दक्षिण के इस छोर में, होकर आप
भरपूर अनुपम कलाओं से, इस शैल पर
खड़ा है बिखेरते यश अपना चारों ओर।
मुखभाव ही उसका प्रेरणा बन चला है
सारे जग के वास्ते; लो, दिखा रहा है वह
सत्व अपना जीतकर इकदम अहंभाव को ! ।। 2।।

देखो इधर, यहाँ, इस श्रवणबेळगोळ में;
देखो उधर, वहाँ, उस कार्क्ळ-पत्तन में;
और देखो ,वेणूर व कोल्हापुर नगरों में।
विराजमान हैं हर कहीं बाहुबलि हमारे-
निश्चलता में अनूठी-सी सच्चाई की,
दिखाते रूप शिल्पकला की कुशलता का ! ।। 3।।

उसकी आत्मा की यह कीर्ति है बह रही
मन में इस तरह मानों बह चली है
कोई धारा निराली दूध और शहद की।
चन्दन के पेड़ों में से होकर आते समय
अपनी लीला में जैसे हो उठता है पवन
बहुत ही सुखी, सूंघते उस सुगंध को। ।। 4 ।।

है यह लाड़ला वृषभ तीर्थंकर का;
और अनुज अभिमानी उस भरतेश का;
भावों से अनुपम दीप्त है मुखमंडल इसका।
त्याग है इसका सचमुच ही निराला;
मन की शांति है सचमुच ही अपूर्वसी;
बना है यह स्फूर्ति कलाकारों केलिए अनुपम ।। 5 ।।
सत्व और सौदर्य से है यह समाविष्ट·
सचमुच है यह आप बाहुबलि जिसमें
साधाना की चोटी है मिलती अवश्य हमको ।
पहाड की ऊँचाई पर स्थित उस पीठ में,
इस नये और अनूठे उसके मंदहास में,
सच्चिदानंद है क्या व्यक्त इस रूप में ? ।। 6 ।।
भुजबलि ने भरत के ऊपर पायी विजय;
मगर उस विजय में भी मानी हार अपनी !
भरत को भी मिला है संबल नाम से उसके ।
सुमिरन इन भाइयों का बनता है आप
बल बाहुओं का भारत केलिए सदैव ; और
आरती भी रत्न की हमारी भारती केलिए ।। 6 ।।

कुवेंपु

18. गोम्मटेश्वर

हे श्री गोमटेश्वर ! बितायी है तुमने सदियाँ कितनी
यों खड़े हो अकेले , गूढतर मौन में और किये बिना
महसूस भी थकावट कोई ? सहनशक्ति है यह कैसी ?
वह शांति भी थी कैसी, मोह लिया जिसने तुम्हारा हृदय,
और की नित्यता प्रदान ताकि सहो तुम बाधाएँ समय की !
थमा कर सिर को नीलनभ में और चरणों को भूतल में,
मिला दिया है तुमने इहलोक को उस परलोक से !
यह जग है सुन रहा ' गर्जन ' तुम्हारे इस महामौन का ;
आँखें इस जग की देख रहीं है बिजली तुम्हारी आँखों की;
गाज तुम्हारे हृदय का गिर रहा है विस्मयाश्चर्य से;
वर्षा तुम्हारी कृपा की करेगी आनंद को प्रदान इस धरती को!

बताओ, हे योगीश ! विराज रही है जो हल्की सी मुस्कान
प्रशांत वदन में तुम्हारे, है क्या अर्थ या मर्म उसका ?
है वह कहीं हल्की सी मुस्कान सिद्धपुरुषों के मुख की ?
या है वह कहीं प्रतिबिम्ब ब्रह्म के उस आनंद का ?
या है वह कहीं परिहास करुणा-रस से भरा, उगा है
जो ओंठो पर तुम्हारे, देखने पर यह सारा अविवेक
तुम्हारे इन लाड़लों का ? महिमा हमारे अविवेक की
यह है कैसी, जो हँसा देती है तुम जैसे विरक्त को भी
जो हो गया है आसीन उस निर्वाण पद के ऊपर!
तुम्हारे पाँवों के नीचे है कालचक्र चक्कर काट रहा;
फिर भी खड़े हो तुम अचल रूप से लिये सौम्य भाव!
उस अविचलता में से कर दो हमको प्रदान इक अंश
ताकि सह सके हम सानंद खलबली इस धरती की !
हे गोम्मटेश ! चक्राधिपत्य हैं कई मिट चले यहाँ,
हुए थे जो उदित और बने थे प्रवर्धमान भी आप !

चक्रेश्वर हैं कई जो समा गये हैं इस धरती के अंदर!
मुकुट और सिंहासन सभी बह चले हैं डूबते, तरते
रोष के साथ सागर में मानवों के अपने लहू के !
उन्मत्त खड्गों के झण-झणत्कार ने कंपा दिया है
धरती के हृदय को, मात्सर्य के कारण अपने में अंतस्थ!
डूब चली हैं इनमें शान्तिबोधक वाणियाँ वे सभी;
भरा है इस लोक में आवेश का हाहाकार ही हर कहीं।
आज तक सुनायी दे रहा है वह घोर निनाद युद्धों का,
कान में तुम्हारे; और लाल रंग के उस प्रवाह को हैं
देख रहे नयन तुम्हारे ! अचल हैं बन चले चित्रों जैसे
कालदेश में हो आते हुए; सदियाँ कितनी बीत चली हैं!
फिर भी खड़े हो तुम शांत भाव से यहाँ, हे गोम्मटेश!

बताओ, हे गोम्मटेश ! कौन हो तुम? गुप्तचर कोई?
या देवदूत या बोधक या साक्षी या प्रहरी परलोक का?
या द्वारपालक वैकुंठ का? या मूर्ति कोई निर्वाण की?
या आकार किसी प्रकार के भय का ? या भैरव कोई,
जो भेस बदल कर आ उतरा है हमारी इस धरती पर?
या हो तुम ही वह सत्यरूप शान्ति और आनंद का?
या हो तुम ही वह महाप्रकाश हमारी दिव्य आत्मा का?
बताओ, हे गोम्मटेश ! तुम हो आखिर कौन ?
बाद-विवाद में उलझते उन रूखे पंडितों को देखकर,
दर्शनशास्त्र के प्रवक्ता आचार्यों का आटाटोप देखकर,
धर लिया है क्या तुमने मौनव्रत, यह बताने कि
निर्वाण है सचमुच अनिर्वचनीय, हे मौनिवर?

और देश के लोगों ने किये थे जो अन्याय सारे
सदियों से हमारी इस भारतमाता के प्रति, उस केलिए हो
चिरसाक्षी तुम ही, चूँकि देखा है तुम ही ने सारे
वे अन्याय अपनी ही आँखों से ! साक्षी भी हो
तुम ही, आस्थान में ब्रह्मदेव के, उन घटनाओं के लिए
जब छल से लूट लिया गया उसके आभूषणों को !
देखा है तुमने उन मुसलमानों को, सताया था

जिन्होंने भारतमाता को, लिये बाये हाथ में
कुरान और नंगी तलवार दाये हाथ में अपने!

ईसा का बनाकर भेस बाहर से और छिपा
शैतान को अंदर, आये थे जो सोना कमाने केलिए,
लांघकर सागर को, बनाकर बहाना व्यापार का !
ईसा के भेस में शैतान का अत्याचार है ढाया यहाँ ।
इसलिए था बह चला भारती का लहू सर से पाव तक
– देखा है तुमने यह सब अपनी ही आखों से !
इसलिए हो तुम साक्षी भारती की तरफ़ से हमारी ।

कहते हैं कि यह अर्हन्त है नादान बालक के जैसे ।
सुन ! दीनता होती है आप लक्षण सदैव माहात्म्य का !
कानाफूसी करते रहने पर भी सूरज, चांद और तारों से,
खड़े रहने पर भी अपनी बाहों में लेकर बादलों को,
भीम आकार तुम्हारा खटकता नहीं कभी अपने मन को,
भले ही हो तुम विभु, देते हो अनुभव अणु होने का !
देखने में भले ही भीम क्यों न लगता है आकार तुम्हारा,
श्रीराम के सुरूप के जैसे लगता है वह बहुत अभिराम !

वे गरीब भक्त हैं सारे, जो करते हैं पूजा तुम्हारी !
ध्यान न देकर हटाने की ओर अभाव उनके इतने सारे,
तुम्हारे अभिषेक के नाम पर उँडेल रहे हैं घटाएँ
घृत और तैल की । देख उनको धर्म के रोष से मानों
मुस्कुरा रहे हो तुम, हे गोम्मटेश करते परिहास उनका !

करते अपहारस्य समय का और खिल्ली उड़ाते सृष्टि का,
लय का भी करते परिहास, खड़े हो तुम यों यहाँ !
कर पाते हैं जो दर्शन तुम्हारे, भर देते हो उनके हृदय में
भावना अभय की, हे प्रहरी महान । कर दो हमको
प्रदान वह दिव्य निर्लक्ष्यता तुम्हारी निर्वाण से उपजी ।
विभुत्व तुम्हारा लांघकर सीमा को भूतल की, और
घेर लेते परलोक को, पान कर रहा है आनंद से
शून्य के उस दुखड़े को ! महिमा है यह निराली तुम्हारा !

जय हो, हे धर्ममूर्ति इस सुन्दर कर्नाटक के शिल्पकारों की !
जय हो हे योगेश्वर, निर्वाण की ऊँचाई तक पहुँचे हो जो !
जय हो, जय हो, जय हो, हे गोम्मटाधीश हमारे !

ब्रह्मसृष्टि के कौतुक को छोटा दिखाने के लिए ही मानों
कर दी सृष्टि इस मूर्ति की तुमने, हे शिल्पकार!
विश्व की मान्यता लूट लेने इक मूर्ति के सहारे,
होड़ में तुमने मानों कर दिया उत्कीर्ण इस मूर्ति को !
किया परिभावन मूर्ति का, किया ध्यान ब्रह्म का;
सब्र से किया तुमने उत्कीर्ण; साधना है यह सचमुच !

पूर्ण हो जाने पर रचना श्री गोम्मटेश की मूर्ति की,
हो गया आप साक्षात्कार इकदम ब्रह्म का तुम को !
है वह ध्यान कौन-सा, जो बड़ा है तुम्हारी कल्पना से ?
तुम्हारी यह साधना है कम किस योग की साधना से ?
तुम्हारी सिद्धि से है बढ़कर कौन सी, हे शिल्पकार ?
तुम हो जीवन्मुक्त ! तुम्हारा कार्य ही है ब्रह्मयोग !

जी. पी. राजरत्नम

19. गोम्मटेश्वर

पत्थर को मोम सा बनाकर, मूर्तिकार के
करने पर बिनती, आ चले इस दुनिया में
बनकर आप भक्तिलंपट ! बेळगोळ के इस
कुट कुट शब्दों की शान्ति को मिटाते हुए
चोटी पर इस पहाड़ के आ बस गये तुम !
चारों ओर इस गिरिवर के रच दिया तुमने
रूप का कूपार ही, समेटते इकदम उसमें
शोभा सूरज ओर चन्द्रमाओं की एक साथ ।
परमेश्वर के इक अद्‌भुत कार्य की इक झाँकी
दिखाने केलिए इस दुनिया को आ खड़े हो गये,
गोम्मटेश्वर के रूप में, हे देव कृपानिधान !

शान्ति का जब हो रहा था लास्य चरणों में,
प्रकृति को उठा बांध लिया अपने कटिप्रदेश में !
नाप डाला इक साथ धरती और गगन को,
और बांध दिया दोनों को तुमने इक डोरी में !
हे श्वेत श्रमण इन दो प्रफुल्लित नयनों के !
जीवन के निगूढ अर्थों के मधुसूक्ति-समूह को
मुस्कान से और मधुर बना, दिया तुमने उपदेश !
सत्व से सहनशक्ति के, सदियाँ सैकड़ों बिता दीं
तुमने लीला के जैसे, बिखेरते मुस्कान अपनी !

हे गुरुवर ! भुला न पाऊँगा तुमको मैं कभी !
कर दो प्रदान मुझको लेश-मात्र ही सही, हे देव,
घनीभूत तुम्हारी अपनी इस सहनशक्ति को ।
कर दो प्रदान मुझको तनिक ही सही, हे देव,
तुम्हारी उस सम्यक दृष्टि को, है जो निराली !

समझ पायेंगे तुम्हारी ऐसी कृपा से हम लोग
तुम्हारे बताये उन वेदों को, बोध भी जिसका
मिलना है हमको तुम्ही से, हे गोम्मटेश्वर !

अज्ञातकर्तृक

20. स्तुति श्री गोम्मटेश्वर की

करूँ क्या स्तुति तुम्हारे इस सुन्दर शरीर की ?
हे कामविजयी ! महेश ! श्री गोम्मट्देव जी ।

आभा है तुम्हारे बदन की चद्रमा की
उस लुभावनी ज्योत्स्ना के समान ।
मूरत यह सुन्दर तुम्हारा है अनुपम
जिससे मिली है कीर्ति इस जग को ।
योग की महिमा तुम्हारी आप करती है
प्रेरणा को प्रदान उस भावज को भी ।

यह सुन्दर मुखड़ा तुम्हारा निराला;
ये भाव जो भरे हैं नयनों में तुम्हारे;
वंकिमता उन बालों की और भौहों की;
शोभा तुम्हारे इन कानों की, और उन
हरी भरी लताओं की, बढ़ रहीं हैं जो
बढ़ाते शोभा तुम्हारी दोनों बाहुओं की
– पहुँचाते हैं ये सभी आनंद अनूठा सा
उन अनिमिषों को उस ऊर्ध्व लोक के !
मिली है दिव्य महिमा ऐसी और किन
देवी-देवताओं को, हे प्रभु, छोड़ तुमको ?

इस दुनिया में बहुत ही विख्यात इस
बेळगोळ नगरी में हो तुम विराजमान !
हे परम करुणालू ! कर पाऊँगा कैसे बखान
यह दिव्य महिमा तुम्हारी ! पाता हूँ मैं
ऐसा करने में इकदम असमर्थ अपने को !
स्थिर भाव मे खड़े हो ध्यान में,हे धीर!
करूँ कैसे स्तुति तुम्हारे इस सुंदर शरीर की!

सं ।। ए.शांतिराज शास्त्रि

21. श्रवणबेळगोळ

कितनी दूरी पर है,यह बेळगोळ!
आ पहूँचा हूँ मैं यहा,देखते देखते
वहीं से उसको ! किये दर्शन,और
छू लिये पाँव उस जिनदेव के ;
की प्रार्थना उससे कि हे परमप्रभु ,
मिटा दें,मेरे किये वे पाप सारे!

देखा मैंने सुन्दर बन को जिसमें
देखा मैने झेंकर करते भँवरों को;
देखा मैंने भवन भी अंगजारि का;
देखी मैंने मंगलमूर्ति भी 'जिन'की!

देखी मैंने चन्द्रवदन की मूर्ति भी;
देखा मैंने उन अमल दिक्पालों को;
देखा मैंने कमल पीठ को सानंद;
देखा मैंने विमल कई मुनीश्वरों को।

कहते हैं कि अनुज हैं आप आदि चक्रेश के।
कहते हैं कि लड़कर पा ली विजय उस पर।
कहते हैं कि साध ली आपने तपस्या भारी।
कहते हैं कि आप हैं प्रियसुत आदिनाथ के ।

बांबी है बढ़ चली पांवों के तल से;
घेर लिया है जिसने बाहुओं तक बदन को।
फिर भी छोड़ी नहीं आपने तपस्या अपनी।
कहते हैं कि साध ली है अपने मुक्तिश्री भी ।

चारों ओर हैं बहत्तर ' जन' बिंब विराज रहें
दक्षिण काशी के नाम से ख्यात इस तीरथ में!
नित चढ़ाता हूँ पूजा मैं बाहुबलि की सेवा में,
करते प्रदक्षिणा तीन बार उस पावनमूर्ति की !

सं ।। ए. शान्तिराज शास्त्रि

22. लोरी श्री गोम्मटेश्वर की

सो जा सो जा, लाड़ले पुरु परमेश के।
सो जा सो जा, आनंद सुनंदा के नयनों के।
सो जा, सारे जग से पूजित चरणारविन्द!
सो जा सारे निर्मल सद्गुणों की खान!
सो जा सों जा, सो जा रे, लाड़ले मेरे प्यारे !

सो जा सो जा, लाड़ले मनुवंश की लक्ष्मी के!
सो जा, आनंदधाम वनिताओं के नयनों के !
सो जा अनवद्यचरित से अभिराम देव मेरे !
सो जा, सानी रखते हैं जग में कौन तुमसे !
सो जा, सो जा, सो जा रे, लाड़ले मेरे प्यारे!

पावों के घुंघरुओं की झंकार है मधुर।
जालंध्र जैसे हैं कान सुशोभित तुम्हारे ।
झूलता है हार वक्ष में अनूठे मोतियों का।
बालाएँ झूलती हैं पलना इस बालक का।
सो जा, सो जा, सो जा रे, लाड़ले मेरे प्यारे!

पतली कमर है जब आप इठलाती,
बल खाते हैं सुगोल उरोज वधुओं के,
कनखियों की आभा फैलती है दिशाओं में,
फूलों पर आ मंड़राते हैं झुंड भँवरों के।
वधुएँ ऐसी झूल रहीं हैं पलना तुम्हारा।
सो जा, सो जा, सो जा रे, लाड़ले मेरे प्यारे!

अनुज है तू आदि चक्रेश का हमारे।
रूप में है तू लगता कामदेव के जैसे!
सुविशाल इस जग में तू है बना,
स्वर्ग के उस अनूठे कल्पवृक्ष के जैसे!

संपन्न है तू सुरुचिर अनुपम तेज से
देखने को मिलता है जो आदित्यमंडल में !
चरणकमलों में ठेंकते हैं माथा दिविज भी।
सो जा, सो जा, सो जा रे, लाड़ले मेरे प्यारे !

वदन है तेरा बहुत ही लगता मोहक।
बना है तू शिरोरत्न इन बालकों का।
साहसी भी, संपन्न भी है लावण्य से।
तू है सुप्रसन्न, हे कुँवर बाहुबलीश !
प्यारा है तू बना सब साधु-जनों का !
करेगा नही क्या तू रक्षा हम सबकी ?
सो जा सो जा, सो जा रे, लाड़ले मेरे प्यारे !

धीर है तू बना मेरु पर्वत के जैसे ।
गंभीर है तू बना पारावार के जैसे ।
करुणानिधान तू है वीर तीनों लोकों में !
तू है चारुकोमलनीलवर्णशरीर भी !
सो जा, सो जा, सो जा रे लाड़ले मेरे प्यारे !

के. एस. धरणेन्द्रय्या

23. रास श्री गोम्मट जिनस्वामी का

भले ही छोड़ दें सब के सब हाथ मेरे,
छोड़ो न कभी, हे गोम्मटेश, तुम हाथ मेरे !
हे गोम्मट जिनस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !
सामने है पड़ी चट्टानों से भरी दरी भारी!
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे!

पीछे है पड़ा वह मरुस्थल शमशान सा!
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे!

मानकर तुमको ही परमबंधु ली है शरण!
करो रक्षा, हे गोम्मट स्वामी, हे गोम्मटेश मेरे!

छोड़ दिया है मुझको, ये निष्करुणी सारे!
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे!

जग में जब आया, था मैं अकेला ही तब !
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

जग से जब जाऊँ रहूँगा अकेला तब भी !
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

आँखे हैं भर आयीं, हाथ है जुड़े हुए मेरे !
करो रक्षा, हे गोम्मट स्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

मुँह से निकल रही है प्रार्थना : शरण है तुम्हारी !
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

बन गया मैं छोटा, सुख भी न मिला मुझको !
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

रंग है उतर चला, शरीर भी है थक गया !
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, गोम्मटेश मेरे !

करके बहुत छोटा इस लंबे चौड़े गात को मेरे
रो रोकर की मैंने बिनती, न की कृपा किसीने ।
करो रक्षा हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

बढ़ेचढ़े लोग भी हो चले हैं आप पागल से ।
सोने की चमक देख हुए हैं सभी पागल से ।
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

जो भी दिखाई दिया, पाँव पड़ा मैं उन सबके ।
छोड़ बेहयाई को मिला न कुछ, मिटी न गरीबी ।
करो रक्षा हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

करते करते सेवकाई औरों की, भुला दिया तुमको ।
और, सचमुच बन चला मैं पापी बहुत ही ।
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

कर दो मुक्त मुझको आशा से, मिटा दो मोह ।
सहस्र अभिधानों के स्वामी, कृपा करो भलाई की ।
करो रक्षा, हे गोम्मटस्वामी, हे गोम्मटेश मेरे !

के. एस. धरणेन्द्रय्या

24. कीर्तन श्री बहुबलि स्वामी का

देखी नहीं ऐसी सुन्दरता और किसी देव में ।
छोड श्रीपति के लाड़ले इस बाहुबलि देव में ! ।। ध्रवक ।।

अनूठी छबि में है यह कामदेव ही पहला;
रक्षा देने में औरों को है सुत ब्रह्मदेव का;
दान गुण में तो कहना है और अधिक क्या-
तज दिया है इसने सारे इस जग को ही !
कौन हे ऐसा जो रख सकता है सानी भी
हमारे इस देव से, हमारे श्री बाहुबलिदेव से !

देखें यदि राजत्व की दृष्टि से इस देव को,
है यह अनुज आप उस भरत चक्रवर्ती का !
देखें यदि गुरुत्व की दृष्टि से इस देव को,
है यह तनुज आप उस श्री पुरुदेव जी का ।
देखें यदि बड़प्पन की दृष्टि से इस देव को,
है यह पूजित आप सुरों के उस अधिदेव से ।
है यह देव बाहुबलि विराजमान बेळगोळ में !

देखें यदि सुन्दरता की दृष्टि से इस देव को,
है यह सचमुच सुन्दर पुरुषों में ही अति सुन्दर ।
देखें यदि उन्नति की दृष्टि से इस देव को,
है यह आप स्थित लोकाग्र में, छोड़ औरों को ।
देखें यदि मान्यता की दृष्टि से इस देव को,
यह है आप पूजित सारे जग में सब की ओर से ।
महदेव यह है बसा यहाँ इस विन्ध्याद्रि में !

के. एस. धरणेन्द्रय्या

25. श्री बाहुबलिस्वामी का कीर्तन

हे परमात्मा, हे प्रभु, हे बाहुबलीश ! हे स्वामी !
दिखाई क्या तुमने अपनी महिमा भारत में ही ! ।। ध्रुवक।।

ढिंढोरा जग में पीट दिया तुमने 'जिन' धर्म का।
पा लिया तुमने वह सुख मिटता नहीं है जो कभी।
हे परमात्मा .....

दुनिया में लोगों को दिखायी ज्योति तुमने।
धो डाला है, हे स्वामी, पाप उनका तुमने!
हे परमात्मा .....

कर दिया प्रदान धरती को उपदेश का अमृत!
प्यार से है पाला तुमने उनको, हे स्वामी हमारे!
हे परमात्मा .....

सकल धर्म के अनुयायियों को बना दिया भक्त !
मुक्तिश्री के बन गये आप वल्लभ, हे स्वामी हमारे !
हे परमात्मा .....

आ गये जब लोग यूरप के, दिखाया परमार्थ उनको !
मोहकर उनके मन को, जीत भी उन पर साध ली !
हे परमात्मा.....

भरत चकेश्वर ने की जब बिनती मौन रूप से,
कर लिया अपने आपको अधीन घोर तपस्या के !
हे परमात्मा .....

तज दी तुमने, हे स्वामी, संपत्ति मूढ जनों की !
मगर कर लिया है पाणिग्रहण तुमने मोक्षलक्ष्मी का !
बने हो प्रभु तुम सुरराज के, हे परमपावन स्वामी !
हे परमात्मा .....

हे प्रभु त्रिलोक के, साध ली है जीत समय पर !
करो इन दीनों की रक्षा, हे परमश्रीलोल स्वामी !
हे परमात्मा .....

तप में रुचि दिखाकर, किया तुमने नित अनशन !
पाप और मोह के ऊपर साध ली है जीत तुमने!
हे परमात्मा .....

किया तुमने प्रस्थान, हे स्वामी, बैठ सुमनस पीठ में !
कर दिया दमन कर्मों का सारे, पवन के वेग से !
रोप दिया भुवन में हर कहीं सुबीज ज्ञान का !
हे परमात्मा.....

बने हो तुम प्रिय आराध्य देव हमारे चावुंडराय के !
हो तुम कामितदायक, हे गोम्मटस्वामी हमारे !
हे परमात्मा .....

कृपा की वर्षा से तुम्हारी, मिटा दे संकष्ट हमारे!
दास धरणेन्द्र को पालो-पोसो, तुम ही हे स्वामी!

पु.ति.नरसिंहाचार

26. गोम्मट जिन एवं श्रवणबेळगोळ के प्रति

तुम हो ऐसे पाँव जिनके हो चुके हैं
काले काले प्रणतार्ति के पंक से!
तुम हो ऐसे, कामांग जिनके हो चले हैं
मुग्ध, स्तब्ध होने से विधि की इच्छा के!

तुम हो ऐसे, हो चुका है अंग जिसका
सफ़ेद फूल जैसा, मारे मन के हर्ष से!
तुम हो ऐसे जिसके माथे पर दिखायी
देती है घुंघुराले बालों की छटा अनोखी!
तुम हो ऐसे जिसके गलें में दिखायी
देती है इक रेखा अनुपम सुंदरता की!

विखेर रहे हो तुम दरहास और कर रहे हो
मृदुतर वर्षा दया के मकरंद की !
दिखाते हैं जो उत्सुकता चुंबन के प्रति, उनमें
पनपा देते हो स्निग्ध मधुर भाव ही !
अर्धनिमीलित नेत्रों की यह दशा है प्रतीक
बाहर के रजों को धो डालने का ही !

मानों कर रहा है प्रत्यक्ष उस चित्तसुख को
उमड़ रहा है जो आंतर्य में अपने;
आँखें हैं तुम्हारी हो चली हैं अर्धनिमीलित;
साथ मिला है जिनको मृदुहास का।
अनुकंपा की कर रहे हो वर्षा तुम ऐसी
मानों बाँट रहे हो औरों को सुख अपना।
खड़े हो तुम उस सोपान मार्ग में ऐसे
बांध रहा है जो धरती और गगन को!

यह दिव्य जीव है बना आत्मध्वज आप।
यह है महिमावान श्री गोम्मट 'जिन',
पदतल में जिसके, हर क्षण में आप
हो जाता है संशुद्ध यह पुरजीवन !

चेन्नवीर कणवी

27. गोम्मटेश

धरती के मोह का कुलाल चक्र; बीच में से उभरी है गिरि।
जनम और मृत्यु के सोपान के उस पार है नील उभार।
फिसलते चट्टान की चोटी पर हैं खड़े महाराजा हमारे।

खुला मैदान सारा बनता है जिनालय ही सचमुच; भेदकर
क्षितिज के एक छोर को आती है रोशनी, बन आवाज सी
लोगों को जगा देनेवाली । स्तब्ध हुई हैं भेरियाँ रण की ।
पकड़ें तो बंधी रहती है मुट्ठी में, खोलें तो फैल जाता है
सारे जग में । इस ऊँचाई तक पहुँचा है मानव बिम्ब कोई ?
अर्हन्त हैं बढ़ चले अग्निपथ पर, करते पार सोपान कई ।
नहाते वर्षा में, ओढते हवा को, यह निरालंब है खड़ा
खुले मैदान में खिलाते कली को आत्मा के अंदर की ।
चार-दिवारी के भीतर है अहम बिराजता है बेरोक ।

खलबली थमे उस श्वेत-कासार के हंस की है आवाज ।
त्याग-भोग के हाथ की टांकी के इक मार से टूट पड़ा जब
इक स्तर चट्टान का, तो देखी भग्नमूर्ति चित्तके अंदर की ।

अम्मेंबळ शंकरनारायण

28. बाहबुलि गोम्मटेश कार्कळ के

मूर्ति है यहाँ शोभा दे रही सामने अपनी आखों के,
उन्नति, सुन्दरता और भाव की एकता का आनंद ही
साकार हो चला है आप जिसमें । निग्रह के कारण
न टिकनेवाले उन सुख, भोग और रागादियों के,
साकार हो उठी है यह सन्मुद्रा दृढ त्याग व योग की ।
आभा के साथ अनूठी, नाच उठा है वदन मंडल उसका !
बाहुबलि की उस सनातन वैराग्य संपदा की यह
शारीरिक शोभा ही मानो रूप ले चुकी है अब यहाँ,
काले पत्थर की कविता के रूप में, लेते मानों
सहारा उस अनुपम मूर्तिकार की शिल्प-कला का ।

हे काव्यर्षि शिलारूप के ! तुम्हारी अतुलनीय उस
सामर्थ्य का संज्ञान ही मानों रूप ले चुका है आप
इस तरह शिलारूपी कविता में अनूठी सी इकदम !
कारीगरी के कारण तुम्हारी, रस भाव के गांभीर्य से
आप हो संपन्न मानों अपना लिया है साहित्य का मार्ग,
फले-फूले जाकर अपने आप कोंपलों के साथ नये ।
तुम्हारे इस अमर काव्य ने, ज़रूर ढल दिया है यहाँ
अपने आपको, हृदय से उपात्त इस मौन-सी भाषा में !

भुजेन्द्र महिषवाडी

29. श्री गोम्मटेश्वर

करके कहीं मंथन नवरसों का, पा कर नवनीत शांति का,
सद्गुणों में ढलकर उसको, स्थापित किया है इस मूर्ति को ?
-शिव, सत्य और सौंदर्य के साकार रूप इस मूर्ति को ।
परिपूर्ण एवं परम पावन लगते इस धवलकीर्ति की रचना को ।

निकल कर बाहर वल्मीक के मुँह से साँप हैं कई
विचर रहे आसपास ही उसके दोंनों पाँवों के;
लताएँ आप चढ गयी हैं उसकी भुजाओं के ऊपर,
संजोते उनको अपनी ही इक शोभा इकदम नयी ।
बांध चुकी हैं, बालों में उसके घोंसले पंछियाँ कई;
फिर भी लगे हो तुम उग्र तपस्या में, हे बाहुबलि !

ऊँचे हो तुम हर तरह से, हे बाहुबलि दिविजयी !
जीत चुके थे तुम आसानी से, राज्य सारा भरत का;
फिर भी लौटा दिया सारा राज्य उसीको उदारता से !।
हे महादानी, बन चुके हो तुम वह महामुनि जिसने
पा ली मुक्ति, आदि जिनदेव से पहले, उग्र तपस्या से !।
कौन है ऐसा, हे गोम्मट योगी, जो सन्निधि मे तुम्हारी
हाथ जोड़कर खड़ा होता नहीं आप भय और भक्ति से !

एन. एस. गदगकर

30. गोम्मटेश्वर

आ पहुँचे हैं हम लोग सन्निधि में तुम्हारी ।
देख तुम्हारी वह मूरत है जो आजानुबाहु-सी,
भाग चली हैं थकान, प्यास और भूख ये सारी !
कहूँ तुमको बुजुर्ग कोई, सूरत है लगती तुम्हारी
भोले-भाले इक दुधमुँह बालक की जैसी !
हुआ है संपन्न गांभीर्य कितना इस मूर्ति को,
इस स्थिति में अनूठी योग-मुद्रा की उसकी !

बार बार देखने पर भी बनी रहती है फिर
एक बार तुमको देख लेने की वही आस ।
मूरत है यह तुम्हारी खड़ी मानों रौंदते हुए
अहंभाव, मदहोशी व संघर्ष सारे इस जग के ।
है ऐसी दिव्य मूर्ति तुम्हारी, हे बाहुबलि हमारे !।

चढते इक इक सोपान पहुँच पाने में ऊपर तक
भले ही हमको लगता है कि थके हैं हम बहुत,
फिर भी मिलता है जो सुख अंत में मन को,
उससे होड़ ले सकता है सुख और कौन-सा ?
उस सधे मूर्तिकार की है यह अनूठी कला,
और संपदा भी यह अपूर्व गंग राजाओं की !
देख इसको सेचिते हैं दांतो तले ऊँगली दबा,
द्वंद्व के बारे में भरत और बाहुबलि के बीच के
और साथ ही उस अनुपम वैराग्य संपदा के प्रति ।

सी.पी.के.

31. मंगल की रीत

लोक में हैं ऐसे लोग बहुत से
होते हैं जो भोग में इबदम डूबे;
वैराग्य भी कइयों का होता है
इस जग में चोदित अभाव से ;
पथ वैराग्य का अपनाया है कइयों ने,
क्योंकि होती नहीं सामर्थ्य भोगने की ।
मगर पथ है तुम्हारा, हे बाहुबली,
कहलाता है अनूठा अपने आप में ।
उसी क्षण में तुमने कर दिया त्याग
जब होनेवाली थी वक्ष में तुम्हारे
साम्राज्य लक्ष्मी ही आप विराजमान !
संजोया तभी निर्वेग में मनोरथ अपना;
मोह लिया तुमको नारी ने निर्वाण की ;
लो, नीरज आप बन चली आत्मा तुम्हारी ।

अपनाकर नंगेपन को अंदर व बाहर से,
खड़े हो तुम चूमते ऊँचाई गगन की !
हे बाहुबली ! हे महायोद्धा अहिंसा की !
आज भी है जरूरत सबको तुम्हारी सिखाई की
- मुक्त होने के अर्थ बैर की भावना से,
सता रही है जो आज भी दिन-रात हमको !
भटखड्गमंडलोत्पलविभ्रमभ्रमरी की संपदा
सताये न हमको कभी; होगी वही संचमुच
मंगल मनाने की रीत निराली इस जग में !

रागौ

32. बाहुबलि हमारे

मंदस्मित-रुचिर-मनोहर है बाहुबलि हमारे ।
जीत लिये जिसने मोह सब प्रकार के,
आत्मयोग से अपने, यह है वह केवली हमारे !
छोड़ संपदा को चित्त की, बन चले सब कुछ
मनः कषाय के जैसे जब तुम्हारे लिए,
करके कःपदार्थ सारे लोभों को जग के,
अंदर व बाहर को करके नंगा, जीत लिया
हे मोक्षकामी, इस सारे जग को इकदम तुमने !

उठाकर जन मन को ऊँचाई तक मंगल की,
सहारे प्रेम के ' क्रेन ' के खिल उठे तभी
कमल के जैसे तुम इस जग के पंक में,
हे पुण्यरूपी गोम्मट स्वामी हमारे । बन जाये
तुम्हारा त्याग ही, हे बाहुबलि, उत्तरमुखी
इस भुवन-जीवन के मंगल के हेतु ।

संध्या की सुन्दरता के जैसे इन सारे
ऐहिक भोगों का कर दिया त्याग तुमने !
इससे उभर आया जो प्रकाश उषःकाल का,
उसमें किया तुमने आरोहण दिव के वैभव का !
मानो हँस रहे हो देख अल्पता इन लोगों की,
बन कर मूक साक्षी खड़े हो विंध्यगिरि पर !
भले ही किया था तुमने विरोध ' व्यवस्था ' का,
दे दिया हमने तुम्ही को रूप इक ' व्यवस्था ' का !
और कर रहे हैं गुणगान आज हम तुम्हारा
चूँकि न सूझ रहा है और कोई राह हमको !

33. सन्निधि में श्रवणबेळगोळ के गोम्मटेश्वर की

मानों किसीने पकड़कर इकदम बंदकर दिया हो मुँह
शब्द हैं हुए यहाँ प्राप्त मूर्च्छा को, मौन के भार से,
इस भव्य सन्निधि में श्री गोम्मटेश्वर की !
गांभीर्य के गौरव की धारा दबाकर चित्त को,
उमड़ आयी है हृदय में से । झुकती है मेरी आत्मा
दीनता में ऐसे, फलों के भार से झुकती है जैसे
लता आप धरती की ओर ! नज़र के गड़ जाने से
ध्यानमग्न सी मूर्ति में, आँखे हो रहीं हैं निष्पंद ।
चीर कर बादलों को, आसमान को छूजानेवाले इस
पर्बत के श्रृंग पर आ घेरते संध्या के धुधलेपन में
खड़े हो अकेले मानों देख रहा है वह गगन की ओर,
मानों फूले जाकर फट जायेगा पेट ही दृष्टि का,
जैसे देख रहा हो खड़े होकर अकेले कोई उस
सागर को, जो फैला है सामाने करते सीमोल्लंघन;
जैसे अकेल देख रहा है कोई उस नभ को
जो है भरा पड़ा तारों से कई करोड़ों की तादाद में
कृष्णपक्ष की काली-कलूटी और रुंद्र-सी रात में;
भव्यता के भाव के आवेश से है हो रहा रोमांचित
यह बदन मेरा । अमृत में डूबते, हो रहा है अब
मृत्यु को प्राप्त अहम रूप का यह कीड़ा आप ।

दैत्य कला है यह; दिव्य दैत्य कला है जिसने
पत्थर में, निर्जीव जड़ता में हास्यस्पद लगती
नग्नता को, ऐसी भीम आकृति को, लगा दी छाप
चीर-जीव-गांभीर्य की और भव्यता की, जिससे
बन चली है यह दिव्य कला आप दैत्य कला ।
धीरज है तो हँसो तुम, हे लघु-हृदयी ! देख जो

हँस पड़ते हो किलकिलाते हुए आम नग्नता को !
तिल-तर्पण है मिलता यहाँ हीनता और नीचता को !
पोषक जल है मिलता यहाँ भव्यता को, दिव्यता को ।
मुग्धता शिशु के मुख की, आनंद-गांभीर्य समाधिस्थ का,
कठोरता व्रज की, कोमलता कुसुम की, रहस्य सत्य का,
अनिर्वचनीयता ब्रह्म की - ये सब साकार हो उठे हैं
दिगंबर की इस महानिर्वाण-मूर्ति में ! लगता है कि
ताला लगा है यहाँ मुँह को ! गाज मौन का गिरा है
शब्दों को यहाँ ! बनती है महिमा यह सन्निवेश की !

हे अर्हन्त गुरुदेव ! हे गोम्मटेश्वर ! लजाते नहीं तुम
नग्नता से, डरते नहीं तुम नंगेपन से ! झूठे भेस से
नागरिकों की अल्पता को ढककर, चमक-दमक से
देते नहीं धोखा तुम किसीको ! क्योंकर दुराव-छिपाव
तुम जैसे महतो-महीय को जिसमें है नहीं लवलेश भी
अल्पता का, और है भूमरूप ही जो सर्वत्र और सब किसी में !
जिल्द रहस्यता का चाहिए दुष्ट, नीच एवं हीन पुस्तिका को !
गगन-विस्तार की उदरता केलिए है कहाँ इसकी ज़रूरत ?
बस भी होती है क्या ? डरती नहीं निज महिमा नग्नता से ।
दुबले को होती है जरूरत कपड़ों की न कि वीरवर को ।
अल्पों को मिलता नहीं है गौरव बगैर वेष-भूषा के ।
किसी राजा को खींच ले आकर उतारें कपड़ें व उष्णीष,
तब आता है समझ में कि गौरव मिलता है किसको-
वेष-भूषा को या व्यक्ति को ? मालूम होता है कि राजा
है सचमुच कौन - वेष-भूषा है या सेवक है ?
ऐसे कितने हैं हममें जो पाते हैं आदर, मगर होते हैं
नंगे अंदर से ! बने हों जो गेरुआ वस्त्रों से गुरु,
धन-संपत्ति से राजा, समर-वस्त्र से रणधीर ,
जनेऊ से ब्राह्मण, भस्म से शिवभक्त और ' नाम ' से
वैष्णव-सब आ जायें यहाँ और सीखें सबक भी
नग्नता की महिमा की, तुम्हारी इस सन्निधि में !
मुंडन, गेरुआ वस्त्र, रुद्राक्षि, वज्रकिरीट, कौशेय, और

गर्भगृह अंधेरे से भरा – तज दें वे इन सबको और
कर लें प्यार दिगंबरता से सत्यता की !
हो ऐसा, हे नग्न गुरुदेव मेरे, सुस्थित हो जो
उस भव्यता की सीमा में, है जो उससे पार,
जहाँ विद्यमान है सुन्दरता भूम्याकाश के उस
संधिस्थान की ! कर दो मुझको अमिट रूप से
प्रदान उस दिव्यनिर्लक्ष्यता की स्थिरता को,
और ब्रह्मगांभीर्य को भूमता और भव्यता के
ऐसे कि प्रकाशित रहें वे गुण सदा, हे गोम्मटेश !

एच. विट्ठल शेणै

34. गोम्मटेश्वर

जाने कितने बरसों से कर रहे हो यह तपस्या ?
हे गोम्मटेश्वर ! यह तप तुम्हारा है बहुत ही उग्र ।
मूंदकर आँखे खड़े हो तुम अविचलित ध्यान में ।
जनता नहीं कि वह महदाशा है तुम्हारी कौन सी ?
शान्ति का दिव्य संदेश बता रहे हो क्या जग को ?
चारों ओर की शांति से मिली है प्रेरणा तुम्हारी शान्ति को ?
संग से सज्जनों के बढ़ती है अवश्य सज्जनता आरों की ।
रामसमुद्र भी शायद सीख चुका है तुम्हीं से पाठ
शान्ति का ! है न ? आँखें क्योंकर खोलते नहीं हो ?
हे देव ! कारण इसका क्या यही है कि कलियुग में
हो चुकी है समधि शान्ति और अहिंसा जैसे गुणों की ?
यह कृष्णगिरि है बना तपोधाम तुम्हारा जिसको
बना रही है रजत-गिरि-सी यहाँ की घनी चान्द्रिका ।
इस मनोहर, परम, स्वगीर्य सौंदर्य के प्रति दिखाकर
प्रेम विशेष, करोगे नहीं कृपा उसको बनाये रखने की ?
उदयकाल में सुनाई देनेवाला कोकिल गान नया नया
और मुदित पंछियों के कंठ से निकलनेवाला मधुर गान
आकृष्ट कर नहीं पाते क्या तुम्हारे हृदय को, हे योगीश्वर ?
यह चांद, सूरज, तारों के समूह, सुरचाप और जुगनू,
यह वंकिम विद्युल्लता, यह गरज और गाजों का कोलाहल !
यह वर्षा, यह हवा ठंडी सी, यह ओस, यह सर्दी और
कालचक्र का यह गमन। हार चुके हैं, हे गोम्मटेश्वर,
भंग करने के प्रयास में सुस्थिरतापूर्ण निश्चलभाव को ।
कवियों को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली प्रकृति भी
लजा गयी है सामने तुम्हारी इस निराली तन्मयता के ।
करने लगी है वह निंदा आप अपने इस लावण्य की ।

खोल दो अपनी आँखे कम से कम इक बार देख लेने
उसकी इस सुन्दरता को, हे मेरे गोम्मटेश्वर प्यारे ।
खोल दो अपनी आँखे देख लेने के वास्ते इक बार
उस मंदहास को, इन संध्या और उषा रानियों के ।
क्योंकर लगे हो उग्र तप में ऐसे ? करो न दया ?
हाय ! भुला ही दिया मैंने कि तुम हो परम योगीश्वर !
परवधू की ओर आखें उठाकर देखता भी है
कहीं परम योगी कोई ? हे सद्‌गुणधाम हमारे प्यारे ।

कुवेम्पु

35. श्री गोम्मटदेव के महामस्तकाभिषेक की प्रगाथा

1

बुला रही है तुमको यह तप्त भूमि ;
उठो, उठो श्री गोम्मटस्वामी !
उठो, उठो, करते मंथन जडता की अचिन्निदा का !
उठो, उठो, करते भंग सदियों की मौन-शिलामुद्रा का ।
करुणा से हमारे प्रति, उठो निर्वाण की सुप्ति से !
उठो, भुला कर उस परिपूर्णता की दिव्य तृप्ति को ।
उठ आओ बनकर हमारे हृदय की मूर्ति बृहत चेतना की ।
बन आओ जन्म जन्मांतर के संस्कार का पारसमणि ।
हमारे आलस्य और तमिस्र के अर्थ बन आओ रविदेव ।
आगे की अभीप्सा के कैरव के अर्थ बन जाओ कुमुदेन्दु ।
आ जाओ करने अनुग्रह ।
आ जाओ करने उद्धार ।
करो आशीर्वाद हमको ऐसा कि जीर्णोद्धार तुम्हारा
बने हमारे लिए भी जीर्णोद्धार जैसे ।

2

हँसो मत हे, महागुरु ! यह है अविवेक हम मर्त्यों का !
नित्यनूतन रहनेवाले तुम जीर्ण हो जाओगे भी कैसे ?
तुम्हारी सर्वपरिपूर्णता का आखिर माना ही क्या है ?
नहीं, नही
यह है नहीं जीर्णोद्धार तुम्हारा !
जीवन जो हमारा हो उठा था बरबाद पा रहा है
फिर से आज अपना ही उद्धार ।
चिपक गया था जो मैल हमारे जीवन को,
आज उसका हो रहा है मस्तकाभिषेक, मानों असनान से

छूट रहा है वह मैल ! है यह पुण्याभिषेक हो रहा
अमृत, घृत और दधि आदि से, हैं जो संकेत
ज्ञान और भक्ति का, और वैराग्य का भी !

3

कनन्ड के उस अदि कवि पंप ने किया
अपने 'आदिपुराण ' में वर्णन तुम्हारे अध्यात्म के वैभव का,
तुम्हारे त्याग, धीरता, उदारता तथा मैत्रि की विशेषता का ;
उसको सुननेवाला कवियोद्धा चावुंडेश था
ढूंढ रहा इक प्रतिमा को उस भव्यता के अनुरूप;
अनुभव की उस भूमता को साकार करवाने की
थी अभिप्सा उसमे !
कर्तव्य से छुटकारा पाकर इक दिन शाम को था
वह आ रहा शिविर की ओर अपने जब
दिखाई दिया उसको शिखराग शिला-पर्वत का ।
संध्या के गगन की पृष्ठभूमि में वह श्रवणगिरिचूड था
लग रहा भीम,रुन्द्र तथा निगूढ आकाश की ऊँचाई के जैसे ।
गडा रह गया वहीं रसयोगप्रतिभारूढ वह द्रष्ट्रार ।
देखा, देखा, देखा, देखा, उस भारी चट्टान को
मानों कर रहा हो उत्कीर्ण या आवाहन;
मानों दर्शन उसका साकार हो उठा हो
उभर आयी उसकी कल्पना में मूर्ति श्री गोम्मटेश की ।
मानों परिपूर्ण उस श्रीगात्र से कांख गये दिगदेश सारे ।
मानों हो उठा सार्थक भूम आवेश चावुंडेश्वर का ।
उस दर्शन के अनुरूप किया शिल्पकार ने
उत्कीर्ण उस मूर्ति को ऐसे कि बने
वह नयनसदृश कर्नाटक के वास्ते,
गर्व की शिल्पविद्या महाशिला में हो आविर्भूत ।

4

भले ही बना था दिग्विजयी,
विजगीषुवृत्ति वाला वह भरत चक्रेश्वर,

जो था बड़ा भाई तुम्हारा, जा पहुँचा वृषभगिरि उस दिन ।
वृषभगिरि की उस मेखलाभित्ति में मिली न कहीं भी
उसको जगह करवाने उत्कीर्ण विश्वंभरा प्रशास्ति अपनी
क्योंकि भरी पड़ी थीं वहाँ प्रशस्तियाँ पूर्व चक्रेश्वरों की ।
जीत लिया था जिसने जग को बन कीर्तिशनि के वश,
दंडरत्न से मिटा दी उसने प्रशस्ति किसी की,
और करवा दी उत्कीर्ण अपनी ही प्रशस्ति;
वह नश्वर प्रशस्ति, अमरता से अनबूझ ।
यों करके अपने को गुलाम अहंभाव का बना ली उसने
अपने को चीज़ औरों की हँसी मज़ाक की । प्रशस्ति थी ऐसी:
स्वस्ति ! समस्तनरेश्वरमस्तकाविन्यस्तशासन की जय हो !
जय हो सकलजगद्विस्तारितयशवाले की !
अन्वयविस्तारक उस अदिदेव के तनूज की जय हो !
यश है फैला हुआ सारे भुवन में
इस इक्ष्वाकुवंशगगनेंदुका, चक्ररत्नाधीश का !
यह है प्रौत्र सुविख्यात नाभिराज का
है जो बना वल्लभ आप नवनिधियों का
और नवाते हैं मस्तक जिसके चरणों में दिविजगण !
दिग्विजय के अवसर पर उसके, भरा पड़ा था भुवनतल
ऐरावत के समान गजों से अनगिनत, और उसकी सेना के
संचलन से निकली धूल ने धेर लिया था सारे सागर को !

जहाँ से होकर गुजरी सेना इस नृप की, हो उठे निर्मूल
सारे बन और पर्वत भी कई बसे थे जो सागर के किनारे ।
बाहुबल से उसके सीमा साम्राज्य की बढ़ गयी जलधि तक ।
देवांगनाएँ गा उठी यशोगीत उसका; शौर्य के सहारे
कुलाचलों तक कर दिया था विस्तृत राज्य उसने अपना ।
शासन भी उसका था सम्मान्य षट्खंडमंडितक्षितितल में ।
उस भरतेश ने कर दिया इस प्रकार आपने सुयश को, जिसको
गाते थे सुरगण, वृषभाद्रि में उत्कीर्ण कि बनी रहे तब तक
ख्याति उसकी इस जग में बनी रहेगी जब तक धरती आप ! "

5

" बनी रहेगी जब तक धरती आप ! "
अधिकार के मोह के पागलपन की और दंभ की होती है
सीमा भी कोई ? हठ भी उसका होता है अजीब कितना ?
आज भी वही शान्ति है खलबली मचा रही है जीवन में हमारे ।
राज्य के सूत्रों को आज भी है जकड़ रखा उसी रोष ने,
उसी द्वेष ने, उसी अहंकार ने, उसी आवेश ने !
शकुनि की भूमिका आज भी हैं निभा रहे रण-नाटक में !
हे पूज्य बाहुबलि,
हे परमवीर अहिंसा के परम धर्म के,
उस रोष को, उस द्वेष को, उस अहंभाव को
उस कीर्तिलोभ को, उस राज्यपिपासा को
उन तिमिरस्वरूपी और आसुरी दूतों को,
हो उठे थे जो साकार तुम्हारे भाई भरत में,
जीत लिया तुमने अपने धवलसत्व से तब
ऐसे कि साथ भरत के सारा विश्व हो चला पदनमित !
भोग की चोटी पर कर दिया संस्थापित विजयस्तंभ को
तुमने ऐसे कि सब लोग नवा गये सर मारे आश्चर्य के !
सुनो हे गुरु, हे कल्पतरु शांति के ! उस वचनवेद को,
" बना रहेगा जो तब तक बनी रहेगी धरती जब तक !
इतना ही नहीं, बना रहेगा वह धरती के मिटने के बाद भी ! "
सुनो उस अमर प्रशस्ति को विजय की, जो है उत्कीर्ण
वज्रलिपि में मनोवृषभगिरि की भित्ति में सब मानवों के,
और रहता है शोभायमाना सदा केलिए :

" आदेश से तुम्हारे निकला यह चक्र जीत पाया नहीं
इस देहाद्रि को ! मौन हो तुम क्योंकर इस प्रकार ?
विजय वह पा सकता है कैसे इस वज्रगिरि के ऊपर !
रहे तुम्हारे वक्ष में निश्चल यह मनोहरी राज्यलक्ष्मी
जो होती है भटखड्गमंडलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी !
पिता ने मुझको दिया था जो भूवलय उसको भी तुमको
कर दिया मैंने दान । भाई, करूँ यदि अपनाने की

आशा उस लतांगि को और भूवनिता को, जिस पर
मरते हो तुम, मिट न जायेगा क्या यह सयुश मेरा !
बातचीत किये बिना, बरता है मैंने जो अविनय
उस दोष का कर दूँगा निवारण तप के सहारे ।
छोड़ दो तुम असदाग्रह और भुला दे दुर्विलास मेरा ! "

6

स्वस्वरूप सच्चिदानंदसाक्षात्करणरूप ही है मोक्ष !
पूर्णता की सिद्धि है होती परम लक्ष्य मानव जीवन का ।
कैवल्य के सम्यक्त्व में सुस्थापित तुम हो जगद्वंद्य ।
ध्यान तुम्हारा करना बनता है चेतनोद्बोधन हमारे लिए ।
पूजा तुम्हारी बनती है हमारेलिए साधन अध्यात्म का ।
उस दिव्य निष्क्रिया-क्रिया के सम्मुख हैं बनते
अन्य सभी कर्म, जैसे होता है विंध्य
सामने पर्वतवरेण्य उस हिमालय के !
हे शाश्वत स्फूर्ति साधुकुल के !
हे विराड्भव्यगुरुमूर्ति !
बस जाओ तुम हृदयों में हमारे तपोरूप से तुम्हारे !
ज्योति की ओर उठाओ हमारी आत्माओं को ।

स्वार्थता के इस तमःकूप से,
ताकि भूम बन जाये हमारी चेतना !
करो हमारा उद्धार इस अभिशाप से अल्पता के !
करो हमारी रक्षा साधकर एकीकरण कन्नड भाषी प्रदेशों का !
धन्य हो जये मुँह हमारे, बोलने से तुम्हारी यह कन्नड भाषा !
हो न माँ हमारी कवैपदक्ष्मता को प्राप्त अन्य भाषा की !
भारतभूमि साधे उस ऊँचाई को तुम्हारी !
तृप्त हो पृथ्वी की सुधाकांक्षा भारती के शान्तिमय वक्ष से !
अवतरित होकर मर्त्यमानसकोश में
नित विजयी हो जाये अतिमानस !
पूर्णता की सिद्धि से हो धरती पर
सदैव राज क्षीरकैवल्य का !

उदित होकर श्रीमहामस्तकाभिषेक में नद-नदी सारे
साधे हमारी धरती के श्रीसुख सदा केलिए !*

---

* मैसूर से करीब पंद्रह मील की दूरी पर है गोम्मटगिरि जिसमें बहुत समय से अरण्यवास के अज्ञातवास में थी मूर्ति श्री गोम्मटेश्वर की । उस मूर्ति के जीणोद्धार के उपरांत संपन्न हुए प्रथम महामस्ताभिषेक के अवसर पर इस कवितां की रचना की गयी थी ।

श्रीनिवास

36. गोम्मटेश्वर

घनीभूत हुआ है सत्य ;
घनीभूत हुआ है चित्त;
घनीभूत हुआ है आनंद ।

घनीभूत होते घुलमिलकर
संतृप्त कर रहे है वे सभी
मनुज के दोनों नयनों को ।

आ मिल गये इन से
बड़प्पन और तेज भी
बल व सुन्दरता करुणा की ।

ये हैं वे युक्तियाँ जो
लड़ीं है नारक गणों से;
ये हैं बनी तारक शक्तियाँ ।

आ मिले जो वे सभी
इकदम पत्थर में आप,
देखो, फूट निकले हैं यहाँ ।

यह है वह धीरता ही
यह है वह गंभीरता भी
जिसका किया है ध्यान,
किया भी नहीं धरती ने ।

दिखाई देती हैं यहाँ
कौन सी रचनाएँ वे ?
है यह शिला या मोम !

मोम हो या पत्थर
छूटेगी नहीं माया कभी ।

हे शिल्पकार ! ढाया है क्या ?
कर पाया जिसको तुमने,
कर नहीं पाते कई,
कर नहीं पाते कई,
कर नहीं पाते तुम जैसे !

रम ले कोई तराशने में
कच और कुच को ही,
बनता कहीं वह योग्य जीवन ?

थोड़ी सी थाप से कोई
तराशे कच और कुच,
बनती है वह कला कहीं ?

कल्पों तक बने रहे जो
वि क्रम के जैसे, कहलाती है
सचमुच वह कला अनूठी !

सुंदरता अंदर की यदि
उद्दीप्त कर दे शिला को,
तो कहलायोगी वह कला !

बोल उठे यदि शिला ही
" कला है यहाँ " तब वह
बनती है शिल्प कहने योग्य ।

हे गोम्मट गुरु हमारे,
हे मायका प्रेम के,
हे बड़े ठौर ब्रत के ।

काफी है संकट का
यह वास्ता मानव को;
पकड़ो पथ स्वर्ग का तुम ।

पकड लो स्वर्ग को
जो है तुम्हारे ही अंदर
छिपा हुआ अज्ञात रूप से ।

अणुरूप में है रहता,
अज्ञातरूप में है रहता;
खिलाओ जाकर तुम उसे ।

बिन कहे ही बताते हुए
मुस्कुराते रहनेवाले हे
प्रभुओं के प्रभु महान ।

करो प्रवेश मेरे इस
हृदय में और सिखाओ
सुन्दरता को पहचानने की रीत ।

कर दो वर्षा प्रेम की
हमारे ऊपर कुछ ऐसे
हे वीतराग, हे विबुध निराले ।

ओ. एन. लिंगण्णय्या

37. श्री गोम्मटेश्वर

श्रवणबेळगोळ के श्री विन्ध्यगिरि की चोटी पर
खड़े हो मौन, हे मुनिवर, हे गोम्मटेश्वर हमारे ।
जग सार तड़प रहा है घोर कर्म के कूप में;
मुस्कुराते हुए खड़े हो तुम निर्वाण के योग में ।
चिरशांति है छायी हर कहीं - धरती व गगन में;
दिव्यात्मा की आभा है प्रकाशित हो रही हर कहीं ।
खड़े हो क्या केवलज्ञान की साधान में, हे जिनमुनि ?
सत्यात्मा, शान्तात्मा तुम हो, हे श्री गोम्मटेश्वर !

बीत चली हैं सदियाँ सैकड़ों तप में, हे मुनिवर,
उस दिन से जब तजकर भोग, ले ली दीक्षा तुमने ।
खड़े रह गये आखिर योग में इस गिरिशिखर पर ।
जानें हम कैसे कि तुम्हारा यह तप होग कब पूर्ण ?
कर्म से हम हैं आबद्ध; मगर तुम हो निर्मलात्मा !
कौन हैं ऐसे जो सानी रखते हैं तुमसे, हे कामदेव ।
खड़े हो क्या केवलज्ञान की साधना में, हे जिनमुनि ?
सत्यात्मा, शान्तात्मा तुम हो, हे श्री गोम्मटेश्वर !

आदिनाथेश्वर की युवराज्ञी पुण्यमयी वर माता
श्री सुंनदादेवी के पुण्यगर्भ से संजात हो तुम ।
सुयशपूर्ण नाम तुमको मिला इस जग में - बाहुबलि !
सहजाता सौंदरी भी पली साथ में तुम्हारे वहीं ।
यहस्वती थी बडी चाची तुम्हारी और भरत बड़ा भाई ;
ब्राह्मिली थी छोटी बहिन तुम्हारी, भाई वृषभसेन आदि ।
पुण्यरूपी हो तुम, हे परमात्मा, हे मुनिवर हमारे ।
सत्यात्मा, शान्तात्मा तुम हो, हे श्री गोम्मटेश्वर !

षट्खंड के चक्रेश होने के उस अहंकार के भाव से
इस धरा में भरतेश ने कर ली विजययात्रा आप ।
श्रीचक्र था बढ़ रहा आगे आगे बड़े ही निर्भय से ;
राजे-महाराजाओं ने ली शरण नवाते सिर उसके सामने ।
भरतेश अंत में आ पहुँचा कैलासगिरि की चोटी पर;
लिखवा दिया उसने वहाँ शिलालेख अपनी विजय का ।
श्रीचक्र तब बढ़ चला उस साकेत नगरी की ओर ।
आगे की कथा से तुम हो सुपरिचित, हे मुनिवर ।
सत्यात्मा, शान्तात्मा तुम हो, हे गोम्मटेश्वर !

श्रीचक्र कर नहीं पाया प्रवेश साकते पुर में ।
विस्मित हुआ भरतेश कि गलती क्या हुई उससे ।
मालूम हुआ कि आये नहीं बाहुबलि शरण में ।
सेना लेकर तो वह आ पहुँचा था पौदनपुर तक,
जब तुम खड़े हो गये भाई भरतेश के सामने;
देखते रह गये विस्मय से देवतालोग स्वर्ग के ।
कांप भी गये मारे भय के! कौन है समान तुम्हारे ?
सत्यात्मा, शान्तात्मा तुम हो, हे श्री गोम्मटेश्वर!

रणधीर भरतेश की तब हुई हार उस युद्ध में।
सुरलोक के यक्ष और विद्याधर, योद्धा सेना के
और सभी मानव जो थे उपस्थित वहाँ, गा उठे
शुभ-जयगीत इस विजय के उपलक्ष्य में तब !
और कौन हैं जो कर पाते समानता, हे बाहुबलि ?
हे सन्नुत! प्यार से ले अग्रज को आगोश में अपने,
दे दिया प्यार से दान में उसको राज्य भी अपना!
तज कर भोग को, कर लिया तुमने योग को स्वीकार!
सत्यात्मा, शान्तात्मा तुम हो, हे श्री गोम्मटेश्वर!

उसी जगह पर, जहाँ खड़े तप करने लगे थे,बढ़ा
इक बल्मीक बहुत ही बड़ा; पनप उठी बनलताएँ ।
फैल गयीं वे जंघाओं, कमर व बाहुओं के ऊपर।
फिर भी किया नहीं भंग उस तपस्या का तुमने !
सतायेंगे कैसे तुमको, हे मनिवर, वर्षा, सर्दी व धूप!

उपसर्ग हुआ हो न कितना ही कठिन, खड़े रहे तुम!
भव्यजन गाने लगे जयगीत, नवाते सर उपने!
सत्यात्मा, शान्तात्मा तुम हो, हे श्री गोम्मटेश्वर!

चौबीस तीर्थंकर हैं यहाँ आस-पास में ही तुम्हारे!
बहुत ही सुन्दर है ब्रह्मस्तंभ, जो है सामने तुम्हारे!
दिव्यतर सोपान हैं बने इस पर्बत के शरीर में!
'जिन'-यक्षियाँ हैं चला रहीं चामर बगल में तुम्हारे!
उमड़ आ रहा है शांतरस पावन-हृदय से तुम्हारे!
देख रहे हो प्रतिक्रिया के वास्ते पौदनपुर की ओर!
कर रहे हो प्रचार कर्नाटक के जनपद के अभिमान का!
सत्यात्मा, शान्तात्मा हो तुम, हे श्री गोम्मटेश्वर!

कोंपले हैं जब फूट निकलीं सारे बन में, मनाते हर्ष
बनदेवी है करती नमन, सजाकर लताओं को फूलों से!
नारियल है सौंपती; बहाती है ठंडी सी हवा तुम्हारे लिए;
ग्रीष्मऋतु में बरसाती है वर्षा, करने अभिषेक तुम्हारा;
वर्षाऋतु में रचाती है वह इन्द्रधनुष का भी वैभव।
शरद्ऋतु के आने पर सजा देती है भक्ति से
हार सफेद बादलों का जिसकी शुभ्रता करती है
होड़ उन सफेद मल्लिका के फूलों से तभी खिले!
सत्यात्मा हो, शांतात्मा हो तुम, हे श्री गोम्मटेश्वर!

करके लेपन अरुणिम चंदन का, पंखा चलाते आप
ठंडी हवा के झोंकों से, भ्रमरों के झंकार से तड़के ही
बनदेवी जब करती हैं घंटानाद, भाँति भाँति के फूलों से
रचते हुए अलंकार, मारे संतोष के जलाते नंदादीप
सूरज और चन्द्रमा के रूप के, क्रमशः दिन-रात में,
भूदेवी है कहती अनुदिन तुम्हारी सेवा में ' नमोऽस्तु ते '!
सत्यात्मा हो, शांतात्मा हो तुम, हे श्री गोम्मटेश्वर !

राचमल्ल राजा के सचिव चावुंडराय के प्रति तुमने
की यह कृपा कि इस गिरिवर में ले लिया यह रूप !
कविवाणी है दे रही तुमको आवाज कि ' बसो आकर, '

हे भव्यमूर्ति ! तुम कर्नाटक के हृदय स्थान में ऐसे
कि मिट जाये अल्पता; उदात्त भाव का हो जाये उदय;
राग-मोह सब हो जाये भस्मसात और भर जाये
मन में हमारे निराला यह भाव सबकी समानता का !
सत्यात्मा हो, शांतात्मा हो तुम, हे श्री गोम्मटेश्वर !

कर्नाटक के हृदय में हो तुम विराजमान, हे मुनिवर!
भूलोक में है विराज रही महान कीर्ति यह तुम्हारी!
हो तुम सबके हृदय में; मगर हम हैं नहीं तुम्हारे हृदय में।
जानते हो तुम सबको; मगर जानते हैं नहीं हम तुमको!
क्योंकर रत्नहार जैसे आभूषण उसको, हो जो दिगंबर ?
रहे अमर कीर्ति तुम्हारी इस लोक में तब तक,
होंगे जब तक भू-गगन, चंद्र और सूर्य !
आशिश रहे तुम्हारी सदैव इस कर्नाटक देश के ऊपर!

अडिबायि रामण्ण शेट्टि

38. श्री गोम्मटेश

पर्वताग्र पर स्थित हे नग्न संयासी!
भव के मोह के बादल को हटाकर
परमपद को प्राप्त करने में होता है
हम को सहायक जो ध्यानयोग, कहलाता है वह !
'भोग' सही अर्थ में वही है जिसके लिए हमको
तज देना पडता है इहलोक के सब सुखों को!
इस सदुपदेश को चिरंतन रूप देने के लिए
तराश कर पत्थर में तुम्हारी यह मूर्ति,
कर दिया क्या उसको स्थापित यहाँ ?
उत्कीर्ण हुई है न तुम्हारी यह मूर्ति निराली
किसी कलाकार के जनम-जनमों के पुण्यफल से?

सत्संग, सत्कर्म, सद्विषय की अनुरक्ति,
सद्भक्ति - सब में हुआ है समावेश सत् का !
रहे वह चिरंतन प्रभा विराजमान, जो है आप
जनम और मरण तथा आधि-व्याधि से अतीत !
समझें कि सार क्या है भोग भूमि के इन
विविध भोग-सुखों का, और जान लें कि
त्याग से ही मिलता है परम-शाश्वत सुख हमको !
धन्य हो, हे ऋषिवर, जो दे रहे हो दुनिया को
ये संदेश हैं जो अपने आप में बहुत ही आदर्शमय !

होती रहती है नित ही यह लडाई मन में
मनुजत्व और पशुत्व के गुणों के बीच !
पाशविक शक्ति के सहारे पा सकते हैं हम
साम्राज्य को, सेना को और श्वेत छत्र को भी !
हो सकते हैं विराजमान हम ऐसे भरम में भी !

चित्तवृत्ति के निरोध मात्र से पाना है असंभव
परमात्मा को और परम आनंद को इस जग में !
इसलिए, हे वीरयोगि, तज कर सारे भोग-भाग्य
पा लिया तुमने अमरपद को सदा केलिए !

हे दिव्यतेज के प्रशांत मूर्ति ! मौन मुद्रा में हो
तुम बहुत ही विराजमान ! इसलिए मौन हो
कि तुम्हारे विरक्त निर्मल गगन में सुशोभित
उज्ज्वल तारागण की और पूर्णचन्द्र की रोशनी में
दिखाई देता है हृदय धरती के सब जीवों का !
लग रहा है तुम को ऐसा कि भाँति भाँति से
बंधु मित्रों को लूटकर जीना ही संकेत है
बड़प्पन का ? बता रहे हो क्या, जीवन है ऐसा
बनता धिक्कार के योग्य इस जग में !

भारत की संस्कृति के पूर्वापर को जानकर,
हो गये हो शांत क्या ? हे दिव्य-भव्य-शांताकार !
सागर के किनारे, उंगली के सहारे, भाँति भाँति के
चित्रों को रचकर खुशी से खेलता रहता है
बालक नादान, दौडते वहीं इधर- उधर, जब
आ लपकी इक बड़ी लहर मिटा देती हैं उनको !
ठीक वैसे नामोनिशान हैं मिट चले राजे और
महाराजाओं के धर्मासन और रत्नासन सभी !
मुस्कुरा रहे हो क्या यह जताते हुए कि
वे राज-धर्म ही बने रहते हैं, जिनके
अंदर और बाहर बहती रहती है जीवदया !

सुब्बण्णा रंगनाथ एक्कुंडी

39. मुझ जैसे.....

कल परसों ही हुआ न अभिषेक बाहुबलि का !
इक छोटे से बच्चे ने पूछा पहाड़ पर दादा से;
" यह कौन है दादा ? जो देख रहा है यहाँ खड़े हो !
चोटी पर इस इन्द्रगिरि के वह क्या कर रहा है ? "
" यह है लाड़ले बाहुबलि ! धीरता की बना है वह मूर्ति ।
शब्दों की धारा में उभर कर बहती है किर्ति इसकी ।
देख रहा है वह उनको जो चढ़-उतर आ रहे हैं ;
हिसाब वह रख रहा है रूक -रूक चलनेवालों का ;
मदद वह पहुँचा रहा है उनको जो थक गये हैं । "
" यहाँ आकर क्यों खड़ा है - इतनी दूर, इतनी उँचाई पर ?
डर लगता नहीं क्या उसको ? पास भी है नहीं कोई !"
" भय उसको लगता है कहाँ । यह है अभयमूर्ति आप ! "
भरत चक्रवर्ती है बडा भाई इसका आया जो कभी
अहंभाव से लड़ने उससे और हार खा गया उससे !
जीते राज्य को लौटाते हुए कही उसने यह बात :
" तू है हारकर जीता ! मैं तो जीतकर भी हारा ।
पहाड़ है मुझको बुला रहा; गगन है बुला रहा !
हैं यहाँ कोई स्थल ऐसा, जिसको चढ़ नहीं पाता मैं ?"
तप ही इक ऐसी चीज है जो दे सकता है उत्तर
जनम-मरण से बंधे हुए इस जीवन के प्रश्नों का ।
देखते उस प्रकाश से भरे पथ को, है जो उस पार
जनम-मरण के, वैसे ही खड़ा रह गया तप में ।
धूप आयी, छाया आयी, हवा का झोंका भी आया ;
कभी हरा, कभी सुनहरा कालीन भी बिछा दिया
कभी सूरज, कभी चांद प्रदक्षिणा कर गये उसकी;
दीप के जैसे खड़े इसको कर दिया प्रणाम उन्होंने । "

" आये हैं क्योंकर इतने लोग आज यहाँ ?
' बाहुबलि ', बाहुबलि करके रट रहे हैं क्योंकर ?

" बच्चे आज इसको करवा रहे हैं स्नान दूध से ।
राह में थके इनको करवा रहता है ध्यान इसीका ।
मुग्ध-वदन से मुस्कुराते यह खड़ा है यों यहाँ -
दुग्ध-हास में खुशी मानते मुग्ध शिशु के जैसे !
" दादा ! असनान करवाने से पहले, तेल मलकर मुझको,
खड़ा करती है माँ इसी तरह; बाहुबलि भी लो,
मुझ जैसे, राह देख है रहा है, पानी उंडेलने के वक्त का !
गोम्मटेश भी मुस्कुरा गया देख इस मुगध विश्वास को !

जी. एस. शिवरुद्रप्पा

40. गोम्मटेश

मानों हुआ है साकार
आटोप ही भगवान का ;
मानों हुआ है साकार
भव्यरूप में प्रेम, दया, सत्य और सौंदर्य का ही !
मानों बांधकर रखा है यहाँ
औदार्य गगन का, और
गांभीर्य भी सागर का ;
शोभित हो रहा है गोम्मटेश बेळगोळ का !
हो तुम ही इक महाकाव्य मेरे लिए !
दिव्य मनौति के जैसे विराजमान,
हे योगीश निर्वाण के,
तुम हो नित्य संपूज्य भू-व्योम केलिए !

बाळु बी. [illegible]

41. गोम्मटेश

हुआ है जो भाव यहाँ साकार,
और जो उड़ रहा है कीर्ति में,
उसमें है समायी कला की विशेषता
इस धरती की, जिसका रंग है काला ;
उसमें है समा वह स्पंदन भी
जो पाया जाता है मन में कलाकार के ।

पा ली तुमने परमसिद्धि उस योगनिद्रा में
जो झुकी नहीं आघात से हवा व वर्षा के;
और सर्दी एवं धूप के कड़े प्रभाव से !

तुम्हारे तपोबल के सामने हार मानकर
सांप हैं सर नवा गये चरणों में तुम्हारे;
लताएँ फूली-फली बढ़ आयीं छाती तक;
नाच रहे हैं दोनों, भाववेश में आकर ।

फूट निकला है फव्वारा भाव का ;
बाहुबलि को देख, उमड़ आयी है भक्ति;
देख उस शोभायमान मूर्ति को आज ।

निर्मल तलैया से युक्त उस पहाड़ी पर,
भारतमाता के उस पावन हृदय में,
काली मिट्टी की हमारी इस धरती में,
है विराजमान यह तपस्वी हमारे ।

सबके आंतर्य में, इस सन्निधि में
गोम्मटेश की, है बढ़ रही शान्ति ।
गर्व में हुआ है समावेश कान्ति का ।

हुआ है जो भाव यहाँ साकार,
और जो उड़ रहा है कीर्ति में,
उसमें है समायी कला की विशेषता
इस धरती की, जिसका रंग है काला ;
उसमें है समा वह स्पंदन भी
जो पाया जाता है मन में कलाकार के !

वेणुगोपाल सोरब

42. गोम्मट

गोम्मटेश है क्या कोई पहेली ?
छिलका उतार फेंका है क्या इसने ?
चमड़े से बढ़कर और क्या चाहिए
रक्षा करने केलिए मान की ?
तोल करके खड़े हुए जिस ठौर पर,
बना वहीं से यान विश्व के उस पार तक !

गोम्मटेश है क्या इक पहेली ?
नहीं तो, है क्या वह गुठली कोई ?
है वह, ढूढा जिसने ठौर शान्ति का
तृप्ति के ठौर से पार और कहीं ।
हुआ प्रकाश; दृष्टि आई उभर कर;
लो, खुल गया इक स्रोत नया !

गोम्मट-गुम्मट-गगन है पृष्ठभूमि !
निकली जो बात मुँह से, निकली वही सच !
है यह साधना कैसी जीवन की !
गर्व और अहंकार चकनाचूर होकर
मिल गये मिट्टी में जब
कोंपले ये फूट निकले स्नेह और प्यार के
मुस्कान भरे ओंठों में और आँखों में !

गोम्मट-कामदेव की मिट चली
कहानी उसी समय क्या ?
अकाम का यह रूप और ये आँखे
-देखने पर इनको, मिलता है कैसा अमृत !
कलियाँ खिल उठीं, और लुटा दिया सुख उन्होंने
जगह जगह पर करते शुभमंगल को प्रदान !

के. एन. भट

43. त्रिक्षेत्र के गोम्मटेश

धीरशिरोमणि और सच्चारित्र्यवान
करता है संतुष्ट अपने आश्रितों को ।
करता है प्रदान भक्तों को इष्टार्थ उनका;
कहलाता है यह ईश्वर का ही अंश ।

विहराजमान है ऊँचे शिखरस्थल पर ।
रक्षक लगता है वह इस गांव का ।
बैठा नहीं है यह ऋषियों के जैसे;
लगता है उग्र तपोनिधि के जैसे !

विस्मय में डालते प्रेक्षकों को अपने,
दर्शाता है यह रीत दृढ मन की !
ऐहिक सुख को मानते नश्वर आप
बना है यह पुरुषाग्रेसर, तजकर उसको !

चंचल मन को खींचते अपनी ओर
उठाता है अवश ही लहरे भावों की;
दिखाई देता है जो शुद्ध दिगंबर रूप में
यह है गोम्मट ' जिनमत ' में संपूज्य !

कर्नाटक में है बेळगोळ, कार्क्ळ
और वेणूर नाम के तीनों नगरों में
यह विराजमान, बनाते उनको तीर्थ !
यह है विराजमान फैला रहा है जो कीर्ति
कर्नाटक के गतवैभव की और शक्ति की ।

शिवरामु

44. दिगंबर चन्द्रगिरि का

" कहाँ थे भाई ? भुला दिया था क्योंकर तुमने
मुझको ? मगर मैंने तो भुलाया नहीं था तुमको ! "
– कानो में जब पड़ी गंभीर ध्वनि ऐसी,
हुआ अनुभव ऐसा कि हाथ फेरा है बदन पर किसीने ।
पाँव रखा था ही पहले सोपान पर; स्तंभित रह गया ।

" स्तंभित होते हो क्योंकर धर्महंतक के जैसे ?
पहचानते क्या नहीं, हे भाई, अपने आपको ? "
कौन है यहाँ जो यह कहता है कि अपने आपको
पहचान नहीं पा रहा हूँ ? – असमर्थ होकर
जानने में इसको, रह गया मैं मूरख के जैसे !

दशों दिशाओं में फेरी मैंने दीनता भरी नज़र;
समझा कि कोई भरम हुआ है मुझको यहाँ ।
श्याम-शिला के गोपुर के जैसे लगते उस
गिरि पर चढता गया मैं, लेते दीर्घश्वास !

लगा ऐसे कि आया था पहले भी कभी यहाँ ;
लगा कि चढ़ा था इस गिरि के ऊपर भी कभी;
लगा ऐसे कि पांव रखा था उसी शिला पर,
लगा ऐसे कि चढ़कर गिरि के ऊपर, बैठा था वहाँ;
लगा ऐसे कि यादे हैं हट रहीं पीछे अपने आप ।

भूलने की करने लगा कोशिश तो बांधने लगी यादें ।
जाने घटी थीं वे सब घटनायें किस पूर्व जनम में !
चित्त मे उभर आने लगी अस्पष्ट चित्रभित्तियाँ ।
बन गया मैं इकदम पागल परदेसी के जैसे !

" भूले भटके लाड़ले ! है नहीं कोई कारण भय का ।
मिट जायेगी चिंता तुम्हारी ! आ जाओ पास मेरे । "
–महान सागर की ओर से तट की ओर आ लपकती
लहर के निर्घोष के जैसे, शब्द ही शब्द तब
भर गये उस स्थल के चारों ओर अपने आप ।

गिरिवर की चोटी पर पहुँच, खुले द्वार को पार कर,
देखी मैंने मूरत जो खड़ी थी वहाँ मेरे सामने ।
घुंघराले बाल उतर आये थे माथे पर, और इधर
खिल उठी होठों पर मुस्कुराहट जब कहा उसने:
" – है मेरा इक रिशता तुम्हारे साथ अटूट–सा । "

सुनते ही फूल उठी छाती मेरी । समझ में आया
कि है यह कौन ? लात मार दी धरा को इक ओर ।
बढ़ता गया मैं ऊँचा–ऊँचा और लगा लिया छाती से
खींचकर उसको अपने पास ! देखकर यह मिलन
हम दोनों का, गगन भी झूम उठा, मारे संतोष के !

" देख लिया तुमको आखिर; छोड़ूँगा नहीं तुमको !
क्षमा कर दो मुझे, भुला दिया था जो तुमको;
हे गोम्मटेश ! ढूंढा था तुमको, थे तुम जहाँ नहीं;
तजो न अपने इस छोटे भाई को तुम कभी ! "

ढीली पड़ गयी बाहें मेरी; बन चला था बाहुबलि
फिर से मूर्ति; गिरकर नीचे कराह रहा था मैं;
माथे को ठंडक पहुँचाकर, नीचे से लाये पानी से ,
उठा दिया उस पुजारी ने मुझको, होश संभालने पर ।

एस. पी. पद्मण्णा

45. भव्य आकार श्री गोम्मटेश का

हे गोम्मटेश, हे तुंगकाय ! भरोसा है
मुझको तुम्हारे चरणों में ।
हे काममदहर, हे रम्यतेज ! हो तुम ही
इस गिरिशिखर के अधीश ।

यह राज्य है बना आकर महिमा का;
विराजमान है कृपा से तुम्हारी ।
महिमा को प्राप्त हुआ बेळगोळ पहाड़,
लोक में बनते अतिशय ।।

लोक सारा बना हुआ है शून्य,
छोड देने के कारण मोक्षपथ को ।
बस हुआ यह झंझट, करो रक्षा, है गोम्मटेश !
चुप हो तुम क्योंकर ?

अतीव सुन्दर है मौनमुद्रा तुम्हारी; चूमती है
बादलों को यह मूर्ति तुम्हारी ।
हे सुगुणशाली ! विराजमान है गगन मंडल
तुम्हारे इस दिव्य रूप से ।।

स्थित हो कमल पीठ में, दर्शाते हो
तुम विमल कायोत्सर्ग को ।
हे कामरूपी ! अमल चरित है अपना
उजागर तुम्हारे दिव्य तेज से ।।

बदन को घेरनेवाली बांबी और लताओं ने
मन में उगायी है विरति ।
उत्तमांग की संपदावलि है भव्य रूप में
करने लगी तेज को उद्दीप्त ।।

धरा में अधिक महिमा है बेळगोळ की,
जिसके शिखर पर हो तुम ।
हे धीर भुजबलि । योगबल से कृपया करो
रक्षा सदैव इसकी श्री की ।।

उत्तर दिशा की ओर है पड़ती नजर
तुम्हारे उत्तमांग में शोभते नयनों की ।
हीरे और मोतियों की संपदावलि सौंप
तेरे चरणों में करते हैं लोग प्रार्थना !

देख तुमको, सीखें सभी निराला
यह धर्म अपने इस सन्नुतांग का ।
हे कामदेव इस लोक के, त्याग और भोग के
तुम्हारे तत्व हैं यहाँ सम्मान्य ।।

तीनों लोकों की संपदावलि ही धरकर
इस चारु मोहन रूप को आप,
आ बसी है इस गिरिशिखर के ऊपर,
इस भव्य आकार में आज !

नित करते पालन सत्य का और उपदेश का
धर्म के होवें हम सुशोभित ।
कृपा से इस असीमित सत्यशील की,
बन जाये स्वर्ग इहलोक ही ।

त्रिविकम

46. कार्कळ के गोम्मटेश्वर

सह्याद्रि की पर्वत श्रेणियाँ थीं गगन को चूम रहीं;
मानों कर रहीं थीं वे अपने में होड़, मारे कुतूहल के,
शिखर-रूपी सिर अपने उठाकर ऊपर खडीं थीं;
वनराजियों के सुमनों की सुगंध से इकदम भरी
हवा थी बह आ रही थंडक पहुँचाते निराली अपनी;
जायें नजर जहाँ तक शोभित हो रहा थी वहाँ तक
नीला वह आसमान ऊपर, और श्यामल मैदान नीचे;
कार्कळ की वनश्री की भव्यता देख खड़ा था मैं
विस्मय में आकर तथा हर्ष से होकर पुलकित !

" आज है पूर्णिमा; यह अहोभाग्य मेरा है कैसा !"
-यों हर्ष में अपने आपको भूल उठा था चन्दमा,
निकल आ रहा था जो आड़ में से पहाडों की;
निष्पंद हो मैं देख रहा था उस भव्य दृश्य को ।

अगले ही क्षण पूरब की दिशा में हुई थी महासृष्टि !
इकदम हो उठा था गगन का आंगन ही प्रकाशित !
पूनम की चन्द्रिका की सुनहली किरणों थीं बिछीं वहाँ !
अंधेरा था वहाँ से निकल भाग रहा चोर के जैसे !

झूले में ज्योत्स्ना की झूलते, ऊपर था आ रहा जब
चाँद पूनम का, हर्ष से पुलकित हो खड़ा था मैं वहाँ ,
मानों बदन सारा बन चला था दृगोन्द्रिय ही उस समय !
ताकि वह दृश्य मनोहर-सा मिट न जाये कर रहा था
उसको चित्रित मन की भित्ति में अपने, बुनते इक
शब्दजाल ही अपने मन में समाने उस सौंदर्य को !
समाधि में भाव की, खो जा रहा था मैं उस समय !

" और भी है देखने योग्य इक और दृश्य महान-सा ।
चलें अब हम यहाँ से ! " - यों धीमी सी आवज में,
कर दिया मुझको जागृत उन दोस्तों ने बगल में खडे ।
बादको चलें हम करने दर्शन श्री गोम्मटेश्वर के ।
आ पहुँचे हम, दिव्य सन्निधि में वैराग्यचक्रवर्ती की !

कार्कळ के गोम्मटेश्वर को देखता रहा मैं इस तरह,
तो उड़ चली पंछी यादों की श्रवणबेळगोळ की ओर ।
चित्तभित्ति में होने लगा अनावरण इक और चित्र का !
कैसी मधुर थी वह स्मृति ! मारे हर्ष के मन में
बह चली थी इक धारा आनंद की अवश ही तब !
मन था पुलकित हो उठा दिव्यानुभव की रससिद्धि में !

बाहर के नयनों के सामने थे गोम्मट कार्कळ के !
अंदर के नयनों के सामने थे गोम्मट बेळगोल के ।
दोनों हैं निमग्न घोर तपश्चर्या में अपूर्व-सी !
दानों हैं जिनेन्द्रिय ! दोनो हैं चक्रवर्ती वैराग्य के !
फिर भी है इन दोनों के बीच इक भेद प्रमुख सा ।
- यों सुना रहा था फैसला उस समय मन मेरा !

मन को फूल के जैसे उल्लसित करने वाली प्रसन्नता,
दिखायी देती है जो मुखमंडल में मूर्ति के बेळगोळ की,
मनोहारी उस मुस्कान का वह विलास व रीत निराली
बिंबित हो न पायी है मूर्ति में कार्कळ के गोम्मट की ।
क्योंकर हुआ है ऐसे ? सताने लगा यह सवाल मन को !

अनभिषिक्त सार्वभौम है यह वैराग्य के साम्राज्य का !
बहुत ही गंभीर मुखमुद्रा में है आप संस्थित यहाँ !
मानकर कार्कळ को सुयोग्य स्थल तपश्चर्या केलिए,
आ बसा है आप कार्कळ की पहाड़ी की इस चोटी पर !

उस महामूर्ति को देख रहा था भूलकर अपने आपको ।
इधर हर्ष से था हो रहा रोमांचित मैं उस समय ।
उधर पूनम का चांद था उठ आया गगन में ऊपर !
करते अभिषेक चांदनी का, गोम्मट के मस्तक पर ।

वह रात जो बितायी मैंने कार्कळ में बन चली है
इक महान रात मेरे जीवन की, सानी नहीं है जिसकी !
उस रात को हुआ मुझको जो दिव्यानुभव ही संप्राप्त,
प्रायः पा नहीं सकता उसको फिर कभी इक बार और !
वह दिव्य संस्मरण निराले हर्ष और रोमांचन का
बना-रहेगा नित नया सा मेरे इस मन में सदा केलिए !

सी. रामचन्द्र स्याद्वादी

47. सिर नावऊँगा श्रीचरणों को श्री गोम्मटेश्वर के

यह है वह परमात्मा कर दिया जिसने पृथक्करण
अपनी चेतना का उस नश्वरस्वरूपी जड़ता से,
और कर लिया अपनेलिए संप्राप्त चिर सुख व शान्ति ।
उसके श्रीचरणों में नवाऊँगा मैं सर अपना हर्ष से ।

हे पुत्र आदिनाथ के, हे लाडले सुनन्दा मैया के ।
हे चक्रेश इस मेदिनी के और अनुज प्यारे भरत के ।
जीत लेने पर भी अपने अग्रज को, तज दिया तुमने
सारे साम्राज्य को ! नमन तुम्हारे उन श्रीचरणों को ।

पा ली जिसने मुक्ति पहले सबसे इस युग में,
बना जो प्रथम मन्मथ भी आप इस युग में,
होता है जो दृग्गोचर उत्तुंग बिंब में इस युग में –
करूँगा नमन उन सायुज्यसंप्राप्त श्रीचरणों में ।

हे गोम्मट मूर्ति ! की तुम ने प्रेम की वर्षा चावुंडराय के ऊपर ।
हे देवश्री ! रह गये जो विंध्यगिरि में बेळगोळ के ।
हे पावन मूर्ति ! हे सुन्दर सुकोमल सादरणीय देव हमारे ।
करूँगा नमन श्रीचरणों में हमारे इस बाहुबलि के ।

रीझ गये तुम निराली भक्ति से उस गुळकायी दादी की !
हे मूर्ति ! बने तुम प्रेरणा उस काळला देवी के लिए ।
तुम हो गुरु दिगंबर देव , पा ली विजय जिसने कर्मों पर ।
करुँगा नमन श्रीचरणों को हमारे इस बाहुबली के ।

खड़े हो, करके निर्लक्ष्य बाधाओं का सर्दी व आतप की ।
खड़े हो, करके निर्लक्ष्य बदन पर बढ़ आती लताओं का ।
खडे हो, करके निर्लक्ष्य बदन पर बढ़ आते सांपों का ।
करूँगा नमन श्रीचरणों में परम पराक्रमी बाहुबलि के ।

तुम हो सद्गुरु श्रमणों के ! सहज सुन्दर मूर्ति है तुम्हारी !
मुखमुद्रा है तुम्हारी जताती इस लोक को धृति व समता ।
और सद्भाव भी अमित सुख शांति से भरी आत्मा का ।
करूँगा नमन श्रीचरणों को सुमतीश इस बाहुबलि के ।

तुम हो नित्य-नूतन मूर्ति, बीते हैं हजारों साल जिसके !
देहयष्टि तुम्हारी मिटी नहीं कुछ भी, है वही भासुरभव्यभाव !
दिखा रहे हो सन्मार्ग सारे जग को अतीव प्रेम से सदैव ।
करूँगा नमन श्रीचरणों को परमदेव इस बाहुबली के ।

यह निर्लिप्त दृष्टि तुम्हारी और यह भव्य आकार तुम्हारा !
हल्की सी मुस्कान तुम्हारी, और यह सुंदरता वीतराग की !
यह मौन उपदेश तुम्हारा दिखाता है जो मार्ग सुखका !
करूँगा नमन श्रीचरणों को जग में सन्नुत बाहुबलि के ।

दर्शन से तुम्हारे होंगे हमको संप्राप्त नित मंगल ही ।
संख-शांति है करती प्रदान हमको पूजा-स्तुति तुम्हारी ।
प्रणाम करने से तुमको बनता है सार्थक जीवन हमारा ।
करूँगा नमन श्रीचरणों को परमदेव इस बाहुबलि के ।

एस. डी. इंचल

48. वैराग्य निधि – बाहुबलि

जीवन के सुख-भोग और सौभाग्य के
पर्बतों कों रौंदते पावों तले, उनसे ऊपर
उठकर रह गये तुम खड़े अजब ढंग से !
अंतरंग अपना खोलकर रख दिया तुमने,
बढ़ते बढ़ते ऊँचाई में आसमान तक !
और बढ़ा दी तुमने शोभा भी वैराग्य की !
यह अचरज की चीज है कैसी निराली !

बने हो तुम वह दिव्य ज्योति, भर लेती है जो
सारे हृदय को करते इकदम प्रकाशमान,
–अध्यात्म के आकाश के उस आंतर्य को !
बने हो तुम नीरवता असीम आकाश की;
बने हो तुम निर्मलता भी आप, स्थित होकर
नित प्रतिमायोग में, सानी है नहीं जिसकी !

हे गुरुदेव, बाहुबलि ! चरणों में तुम्हारे पूज्य
करूँगा समर्पित अनंत भक्ति मेरे हृदय की ।
करते आरोहण दिनों दिन त्याग, तेज व उन्नति का,
कर लिया साक्षात्कार तुम्हारी आत्मा ने मुक्ति का !

तुम्हारे पुण्यस्वरूप के स्मरण से पिघल चला है
स्वर्णशैल आप बहते जिन-तरंगिणी के रूप में ।
उगमे है हुआ इस तरंगिणी का चिंतनवलय में
और फूट निकली है वह हृदय के क्षेत्र में हमारे
जिससे बन चला है यह जीवन हरा-भरा-सा !

समन्वय है साधा जिसने योग और भोग में,
उस भरत चक्रेश के तुम हो प्यारे अनुज !
किस साधना के अर्थ यों खड़े हो तुम
नित प्रतिमा योग में, बता हे त्यागभानु !

एस. पी. पद्मप्रसाद

49. गोम्मट के सामने

नमो, नमो, तुमकोहै हे गोम्मट स्वामी,
जिसने रौंद दिया स्वार्थ के पर्वत को
और कर दिया आरोहण मोक्षशिखर का
और मुक्त हो गये सब कर्मों के बंधन से !
नमो, नमो, नमो, तुमको, हे गोम्मट स्वामी,
पाया था जिसने सब कुछ और तज भी दिया
जिसने सब कुछ और पा लिया परमपद !

सुख पाना ही नहीं है परमलक्ष्य जीवन का ;
उसके उस पार तक पहुँचा है सिद्धि का पथ ।
वह सुख है इक और स्वरूप का जिसके लिए
होती है आवश्यकता दीर्घकालीन तपस्या की,
और उस दृढ निष्ठा की जिसके बल पर
मन को प्राप्त होती है शक्ति सब कुछ त्यागने की ।

यही है वह जिसने जीतकर चक्रवर्ती भरत को,
चकानाचूर कर दिया उसके अमित अहंभाव को;
तज दिया सब कुछ जो था अपने पास, और
की चाह उस चीज की जो थी नहीं पास अपने !
लोभ ऐश्वर्य का बांध देता है जिन श्रृंखलाओं में ,
तोड उनको निकल आया और बना आप गोम्मट !

महान शान्ति होती है उपज महान त्याग की सदैव !
उसीसे है बिखरी धवलस्मितकान्ति चेहरे पर !
यह है वह धीमंत मूर्ति उस भव्य योग की
सामने जिसके नतमस्तक हो धंस जाता है काल !

वेषभूषा है शरमाता यहाँ; शब्द है मान लेता
अपनी हार मौन के समुख, और राज होता है
यहाँ भाव का बुद्धि के ऊपर । ललकारता है
शाश्वत यहाँ नश्वर को, और पास बुला उसको,
गले लग जाता है उससे, बिंबक के जैसे !

सदानंद नायक

50. गोम्मटेश्वर

उन्नतोन्नत महाशैलेन्द्र के शिखरस्थान में जब
स्थापित हुई अत्युन्नत प्रतिमा श्री गोम्मटेश्वर की,
उषा के ओंठों पर खिल उठी हँसी प्राची-दिगंत में;
बढ़ चली शोभा हँसी की श्री गोम्मट के ओंठो पर भी !

आदि तीर्थंकर का वह लाड़ला भरतचक्री जब लौटा
अपने यहाँ षट्खंडविजय के उपरांत, और
चक्रवर्ती के दंभ से, लिये सहारा चक्र का, किया अपमान,
तो खड़े रह गये तुम, तप में जिन-विजय-स्थापना के !

श्रवणबेळगोळ में विराजती गोम्मटेश्वर की प्रतीमा
उत्तमोत्तम शिल्प कला के सहारे टिंढोरा पीट रही है :
भारत के इस उत्तुंग धर्म के ध्येय को साधना,
आत्मदर्शन के महामेरू की ऊँचाई तक पहुँचना,
अर्हन्तत्व और मोक्षलाभ भी तपसे बनते हैं
आसान साधारण से साधारण व्यक्ति के लिए भी !

भुजबलि हिप्परगि

51. शिलायोगी

आइये हे यात्रिकों, बेळगोळ की तीर्क्षक्षेत्र को,
जहां प्राप्त की मुक्ति श्री बाहुबलि योगी ने !
दुःख इस भवलोक के मिट जायेंगे आप ही,
करें यदि प्रणाम भक्ति भाव से उसके प्रति !

गिरि - पर्वत - कन्दरा और ताल तलैयाओं से भरा
बन यह बेळगोळ का बना है सचमुच मायका
श्रृंगार का और श्री का ! खोलकर आँखे मन की
देखें यदि तो लगता है कि शिला है बनी कला यहाँ ।

इन्द्रगिरि में विराजमान सौंदर्य की है यह मूर्ति;
सारे जग में फैली हुई है इस की अमिट कीर्ति !
जन-मन में जगाती है यह भक्तिरस की स्फूर्ति !
फैल जाती है तन-मन में जो, है यह ऐसी ज्योति !

तुम हो योगिराज जिसके सिर पर है विराजमान
मुकुट ज्ञानमणि का; आत्मतेज है तुम्हारा देदीप्यमान
सूरज के किरणों के जैसे ! है यह सचमुच परब्रह्म
दिव्य दीप्ति में; दीक्षा में मोक्षद्वार का किया है आरोहण !

चन्द्र के समान इन्द्रगिरी के सद्धर्म की मूर्ति हो तुम !
भरा है तुम्हारे हृदय में कान्ति उस जिनदेव की !
सुगंधित सुधा से सघन होती है ख्याति रत्नत्रय की !
तुम्हारे हृदय में है भरी गंभीर महिमापूर्ण ज्योति !

जय हो, जय हो, स्वामी मेरे ! इस अवसर पर
महामस्तकाभिषेक के, करो स्वीकार प्रणाम मेरे !
मनुकुल का मंगल साधनेवाले, हे महायोगी, हे स्वामी,
कर दो हमको प्रदान मधुचंदन तुम्हारे वक्ष का !

आनंदकुमार

52. गोम्मटेश्वर

वह कौन सी है शांन्ती,कौन सा है मौन
जो बांधकर रखा है तुमको इस प्रकार ?
सारी दुनिया है खड़ी आँखे अपनी खोलकर,
देखते हुए तुमको। खड़े हो अचल होकर,
हे योगी, किये बिना अनुभव थकान का कोई !
कब तक चलेगा यह जप और तप तुम्हारा ?
कब तक खुलेगी यह नींद भी तुम्हारी ?

राजाओं का राज्य है अब मिट चला ;
रामराज्य है आया अस्तित्व में आजकल !
नामोनिशान जाति और धर्म के झगड़ों के
मिट चले हैं और शान्ति है बस गयी अब !
देव की सृष्टि है फीकी पड़ गयी समक्ष तुम्हारी
योगनिद्रा के ! गरजता ब्रह्मास्त्र भी हो चला
इकदम शान्त सा । कहूँ और क्या महिमा तुम्हारी !

छीनकर भागे उस दिन आभूषण माताश्री के !
देख यहाँ सोने की धारा को बहते हुए,
उस धारा को ही ले भागे निर्मम वे राजालोग !
शान्त भाव से जी रही थी जो माँ हमारी,
उसका बदन है जल उठा देख यह सब कुछ !
खड़ी है आज वह ऐसी कि उसके चहरे की
वह शोभा ही मानों मिट चली है इकदम!

धीर पुत्रों को जनम देनेवाली उस माता की
हालत है हो चली यों अति चिंतनीय-सी;
जी रही है वह सहते असहनीय उस दुःख को।
बस करो तुम अपनी योगनिद्रा, हे प्रभु मेरे !

बस करो तुम अपनी वह तपस्या भी महान !
बने रहो तुम देवलोक में साखी इस माता का !

खोल कर आँखे अपनी देख लो न तुम ही!
है क्या वही शोभा पुरानी चेहरे पर इस जग के?
सुन्दर सा वह चेहरा है कहीं हो चला गायब;
फीकी है पड़ गयी इकदम उसकी वह शान!
ला दो फिर से वही शोभा उसके चेहरे पर;
कर दो फिर से संस्थापन उसी सद्धर्म का !
तभी तो लौट आयेगी वह शोभा पुरानी जरुर,
और चमक उठेगा चेहरा उसका जीता-जगता ।

ला दो वह इन्द्रलोक ही इस माता को;
ला दो वह कामधेनु ही इस माता को;
आ जाये शोभा श्रीविद्या की चेहरे पर उसके।
बस करो अब तुम अपनी इस तपस्या को !
खोल कर आँखे अपनी करो वर्षा कृपा की;
ताकि भाव समता का जागे जग के हृदय में!

बसवंत बा बडिगेर

53. गोम्मट है निधि हमारे मन की

अंबर के बिना खड़े हो तुम अंबर में
करके सीमोल्लंघन ऊँचाई और विस्तार का ।
पहाड़े पर खडे हो बनकर आप पहाड़ ।
हे दिगंबर प्रभु हमारे ! हे गोम्मटेश्वर हमारे !

बांधव्य है स्थापित किया भू-गगन का तुमने ।
बने हो तुम सब जीवों में स्पंदन चेतना का ।
महत्ता और बृहत्ता है साकर हुई तुम में ।
बनकर खड़े हो तुम इनका प्रतीक यहाँ ।

पा ली है तुमने विजय उन छः गुणों पर !
काम के द्वारा साध लिया है ध्येय प्यार का !
रसरूप में बसे हो तुम सहृदयों के हृदय में !
बनकर खड़े हो तुम प्रतीक सद्गुणों का !

दिखा रहे हो तुम हम लोगों को वह मार्ग नया
होकर जिससे आये हो तुम इस लक्ष्य तक !
खड़े हो तुम बनकर प्रतीक महान त्याग का ,
और मूल भी भूत,वर्तमान और भविष्य का !

परम धर्म से मिटा दी है तुमने पीड़ा जग की ।
चतुर मार्ग से पहुँचा दिया है सुख इस जग को !
ज्ञान से गहरे हटा दिया है अंधकार भी तुमने !
खड़े हो, गोम्मट, बनकर निधि हमारे मन की ।

भुजेन्द्र महिषवाडी

54. हे, बृहद्-बाहुबलि !

हे बृहद्-बाहुबलि ! पूजनीय हमारे लिए !
कहा जाता है इस सारी दुनिया में है नहीं
ऊँची मूर्ति कोई तुम्महारी मूर्ति से बढ़कर !

मिलेगी कहाँ सुंदर-सी मूर्ति तुम जैसी
उत्कीर्ण हुई हो जो एक ही शिला में,
और सर्वांग सौंदर्य से भी परिपूर्ण ?

उन्नति यह तुम्हारी भाती नहीं केवल
बाहर की हमारी इन आँखों को;
मगर खोल देती हैं आँखे भी
हमारे अंदर की, कराते अनुभव
हमको तुम्हारे व्यक्तित्व की ऊँचाई का !

धीरज में लगते हो तुम हिमाचल जैसे !
तुम हो वह साहसी हराया है जिसने
षट्खंड के विजयी को अपनी शूरता से !

त्याग में तुम हो ऐसे नग्न मुनिवर
तज दिया है जिसने सकल साम्राज्य के
उन सभी भोग-भाग्यों को, सुख-संपदाओं को !

तुम हो ऐसे कर लिया है जिसने वरण
मुक्तिवनिता का, अपने पिता से भी पहले !
लाड़ले, हो तुम बहुत ही प्यारे वर उसके !

ऐसे हैं कितने, ऐसे हैं कितने, हे स्वामी,
रखते हैं जो सानी तुमसे किसी चीज में ?
सत्वशील तुम जैसे, तत्वनिष्ठ तुम जैसे
है कौन भोग में भोगी और योग के योग्य !

पांवों तले रौंद दिया हो जिसने हमेशा
ऐसे-वैसे भावों को, हैं जो आपस में विरुद्ध,
ऐसी-वैसी शक्तियों को आपस में विरुद्ध !
– कौन है ऐसे, कौन है ऐसे, तुम जैसे !

पूर्वापर संबंधों से हैं जो नहीं आबद्ध,
एसे उन गुणगणों की चरमसीमा को
रौंद डालनेवाले हैं कौन, तुम जैसे !

आसक्त थे जैसे, अनासक्त भी थे वैसे !
विजयी होकर भी तुममें थी वह
हार मानने की उदारता बहुत ही निराली !

भले ही थे तुम ही वह कामदेव प्रथम,
था कहीं निष्कामी तुम जैसे और कोई !
भले ही थे तुम हठीले बालक के जैसे,
था कहीं हठयोगी तुम जैसे और कोई !

खड़े हो तुम उत्तर की ओर करके
अपना मुँह इस विंध्यगिरि में, जो है
विराजमान भारत की दक्षिण दिशा में ।
देख रहे हो क्या तुम उत्तर की दिशा में ?

भारत की उत्तर दिशा के उस छोर पर
शिखर-स्थान में उस कैलास पर्बत के,
दक्षिण की ओर मुँह करके बैठे हैं
वह वृषभनाथ जी, पिताश्री तुम्हारे प्यारे !

देख रहे हैं क्या वे तुम्हारी ही ओर ?
नज़र तुम्हारी लगी है क्या उन्हीं पर ?
नहीं ! बनी है इस बीच में राजधानी
अयोध्या नगरी पूजनीय भारतवर्ष में,
जहाँ विराजमान है भरतचक्रि, भाई तुम्हारा !

पिता और पुत्र ! दोनों देख रहे हैं क्या
उस प्रिय भाई भरत को ? कर रहे हैं क्या

शुभाशंसन उस साम्राज्य को जिस पर
है वह राज कर रहा महान भारतवर्ष में !

समय है बीत चला और भरत चक्रेश भी
समा गया है मिट्टी में आप मिट्टी बनकर !
साम्राज्य भी गया बनकर आप खंडहर !

जानें हुए थे राजे और महाराजे कितने,
और साम्राज्य भी कितने मिल गये जो मिट्टी में !
फिर भी देख रहे हो तुम उसी दिशा में !

कर रहे हो नित रक्षा सारे भारत की !
सामर्थ्य और शील, सत्य और अहिंसा –
ये ही तो हैं सूत्र भारतपुत्रों के जीवन के !

मान कर इस सूत्र को चलें यदि
लोग हमारे तो मिल जायेगी
स्वतंत्रता अवश्य भारतवर्ष को !

छोड़ दें यदि हम उस सूत्र को,
तो होगी बरबादी अवश्य हमारी !
यह संदेश तुम्हारे उस जीवन का
समझा रहे हो हमको सदा से !
बतला रहे हो हम महान तत्वको !

अंतःसत्व यह भारतवर्ष का छिपा है
उसके अध्यात्म के अनुपम तेज में ।
हाथ धो बैठें यदि हम लोग उससे,
तो मिलेगी कैसे स्वतंत्रता हमको ?
उसी में तो छिपा है सर्वस्व हमारा !

खो दिया था जब हमने उस तेज को
खो दिया हमने राज्य भी वह अपना !
और लगे थे हम पर हुकूमत करने
सदियों तक म्लेच्छ समुदाय वे कई !

हुआ जब हमको परिज्ञान उस सत्य का,
पा लिया फिर हमने वह राज्य अपना;
और सुख उसका भोगने लगे आंनद से !

बीत चले हैं युग कई, मगर थिर बने हो तुम !
थिर बना है आत्मतेज, हे भुजबलि, तुम्हारा !
तुमसे है मिला संबल भी और मौल्य भी !
तुमसे हैं मिलते हमको जीवन और परमार्थ !

हे पिता हमारे ! ले आये हैं अमृत हम यहाँ,
करने भक्ति से आज अभिषेक तुम्हारा !
कर दो, हे देव, अमर तुम्हारे इन पुत्रों को !
बनाये रखो कीर्ति हमारे इस भारतवर्ष की !

जय हो, जय हो, जय हो, देव तुम्हारी !
जय हो, जय हो, जग के इन जीवों की !
ओम् शान्तिः शान्तिः ! बन जाये यह संपूर्ण !
ओम् शान्तिः शान्तिः ! बन जाये यह परिपूर्ण !

ओ. दे. शी.

55. बाहुबलि - पंप के द्वारा चित्रित !

1

पंप के द्वारा चित्रित उस बाहुबलि को,
धर्म के उस परम विक्रमी को, करते हैं
अर्पित हजारों-लाखों नमस्कार हमारे !

आदि पंप का यह अर्हन्त है बना
आचार्य इस सारे जग केलिए हमारे !
सविपाक निर्जरा के स्तर की जनवाणी
निकल आ रही है यह कहाँ से ?
उमड आ रही है यह कहाँ से ?
- " छोड दों ये कोरी बातें अहम की ! "
समझ लो ठीक तरह से पुदगल को ! "

वज्र के सोपानों का करते आरोहण
धीर गंभीर्य से इक निराले-से
पहुँच गये तुम परिनिर्वाण की ऊँचाई तक !
बने हो सचमुच ही तुम अमृतांग !
अर्पित हैं हजारों लाखों नमस्कार हमारे !
हे गोम्मटेश्वर बेळगोळ के !
हे प्रभु, करोड़ों लोंगों के !

2

तुम हो मनुज ऐसा, मिली है जिसको
कीर्ति मनुजकुल के ललाम बन जाने की ।
सिद्ध शिला में करके निर्माण तुम्हारी
भव्य मूर्ति का, हुए हैं धन्य शिल्पकार कई !

मानते हैं वे अपने को पुनीत बारंबार !
लोग सारे षट्खंड के नवाते हैं अपना सिर !

"नहीं चाहिए मुझको यह सारा साम्राज्य,
लड़ाता है जो भाईयों को भाइयों से अपने !"
– यों कहकर अहंभाव की उस सीमा का
करके पार, खड़े रह गये क्या तुम
करते प्रयोग वैराग्य के उस चक्र का !
हे गोम्मटेश्वर बेळगोळ के !
हे प्रभु करोड़ों लोगों के !

3

कहिए कि जय हो हर-हर महादेव की !
करते प्रार्थना, कहिए कि जय हो जिनदेव की !
करते प्रार्थना, कहिए कि जय हो शिव जी की!
करते प्रार्थना, कहिए कि जय हो जिनदेव की !
चलें दौड़कर संपन्न करने अभिषेक गोम्मट का !
चलें, हे भक्तगण शिव, विष्णु और जिन के !
करते सुमिरन बाहुबलि का, करें प्रार्थना और भजन !
हर-दिन, निशि-दिन और आजकल गायें उसका कीर्तन ।

4

जिनश्री-संपूज्य, हे गोम्मटेश्वर !
जिनश्री-श्रेयांस, हे भव्यजीवि !
नमो जिन-कल्याण को !
नमो जय-कल्याण को !
नमो शुभ-कल्याण को !
नमो जिन-कल्याण को !
हो जायें आप धन्य जीवकोटि लोकाग्र की !

लीला वसंतकुमार

56. संदेश महान त्यागी का

हे गोम्मट देव ! आराध्य देव हो तुम हमारे !
पाने दर्शन तुम्हारे आ पहुँचा हूँ मैं यहाँ !
आसान है नहीं उतना पाना भी दर्शन तुम्हारे !
चढना है इस पहाड़ी को पाने दर्शन तुम्हारे !
मगर देख पाते ही तुमको खिल उठा है मन !

पाकर दर्शन तुम्हारे बना धन्य जीवन मेरा !
करते स्तुति तुम्हारी कर ली मैंने पूजा भी !
स्मरण ही तुम्हारा बनता है काफी मेरे लिए,
बसे हैं जो पादपद्म तुम्हारे, हृदय में मेरे !

की मांग मैंने क्या क्या चीजों की, हे देव !
समझ भी न पाया कि तुम दे नहीं सकते,
क्योंकि खड़े हो तुम यहाँ तजकर सब कुछ !
है नहीं कोई महान त्यागी तुम जैसे इस जग में ।

खड़े हो तुम यहाँ हजार बरसों से यों ही ।
बता रहे हो कि जीतना है जन्म और मरण को ।
साध कर दिखाया है तुमने, समझ नहीं रहे हम !
आयु है हमारी गुज़र चली सार्थकता से वंचित हो !

चेन्नवीर कणवी

57. गोम्मट सपनों का

बाहुबल दिखाना, विजय साधकर दंभ दिखाना
- लात मारकर अहंभाव की इन प्रवृत्तियों को,
ऊपर उठकर खहो हो तुम छूते आसमान को !
दुखे नहीं पाँव तुम्हारे, मगर दुखा दिया काल को !
नये दिगंत में है दृष्टि गाड दी तुमने इधर !
अमर सत्य-सौंदर्य के महामस्तक के ऊपर
इक हजार और आठ कलशो में भर भर कर,
उँडेलने पर दूध, भर लिया चुल्लू में ऐसे उसको
कि एक बूंद भी उसका छलक न पाया तब !
मानों दूर दूर के श्यामल पुत्रों को बुलाकर ।
पिला रहे फेन से मिलते दूध उनको !
गगन में तैरते आया इक बादल चमकता ;
' धो, धो ' करके बरसा दिया पानी तब उसने,
मानों धो डाला चिपके हुए तेल को उसने !
मानों सारा पहाड़ था ठठाकर हँस रहा वहाँ !
- देखा मैंने इक सपना अविस्मरीण-सा !

बी. ए. सनदी

58. गोम्मट

धरती को दबाकर पैरों तले खड़ा है
धरती की आशाओं पर विजय पानेवाले
गोम्मट के चरणों का यह अंगूठा !
माँगा नहीं हो भले ही, सहारा देने केलिए
आयी है छाया आसमान की, इस केलिए भूम आकृति ?
देख औरों की धरती की आशा व फल की आशा
तरस खाता है उन पर, हृदय उसका सदैव !
मूल प्रकृति के ऊपर पायी थी मानस ने जो
दिग्विजय, ताकि मुरझा न जाये कली उल्लास की ,
संवार दी है क्या छाया उसके घुंघुराले बालों ने ?

59. णमो गोम्मटाणाम् ।

लगी है प्यास षट्खंड मंडल के खारे सागरों को !
ख्याति-पंक का लगा है मोह वृषभाचल को !
विरुद है :
" बहुरत्ना वसंधरा ! "
मगर आ पड़ा है
अकाल मिट्टी केलिए ही ।
भूख लगी है अन्न को ; जंग लगा है सोने को !
घुंघुंधले प्रकाश को भी सताता है प्यार निशा का !
हवा ने चाही थी
छुट्टी इक दिन की अप्रत्याशित ।
हर किसी अफसर को हो गयी है बैचैनी !
तुम हो वह दिव्य चक्ररत्न जिसका हुआ
आविर्भाव भरत के आवर्त सत्ववर्तुल में !
आयुधागार को हानी न पहुँचाकर किसी प्रकार का,
कहलाये तुम सम्यक्त्व का साकार रूप !
मंदिर के गर्भगृह में संचित
गर्वरस चूता रहा हो मानों, हुआ यह उद्घोषः
" बसी रहे तुम्हारे वक्षस्थल में अचल रूप से
मनोहरी वह राज्यलक्ष्मी, होती है जो सचमुच
भटखड्गमंडलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी आप !
तात की ओर से हुआ था जो मुझको प्राप्त
उस भूवलय को भी दे देता हूँ दान में तुमको !
यह क्या बात है भाई ! करूँ यदि पाने की इच्छा
उस ललितांगि को तथा धराललना को जिसके लिए
मरते हो तुम, यश मेरा कलुषित न होगा क्या ? "

बस है क्या गौरव ? चाहिए पुरस्कार और कोई ?
लगती है सदियाँ इसको सह पाने के वास्ते !
वलय हुआ न काफ़ी
ऊँचाई और विस्तार केलिए चित्तचैत्यालय की !

रुक गया यह जग कटितट के पास ही ।
केवलज्ञान हो चला इकदम उजागर,
और हो गया संस्थापित विंध्यगिरि की चोटी पर !

जुगली करने में
थक चला ऋतु, और
बहक गया मास भी !
णमो अरिहन्ताणाम् !
णमो गोम्मटाणाम् !

सु. रुद्रमूर्ति शास्त्री

60. गोम्मट

देख तुम्हारी भव्य मूर्ति को
बेळगोळ की उस पहाड़ी पर,
शरमायी जाकर अल्पता मेरी
ढूंढ रही थी बिल कोई छिपाने
सर अपना आसपास ही कहीं !
देख तुम्हारी नग्नता, मज़ाक की
मेरी हँसी का दम घुटने लगा था !
कपड़े मेरे उतर गये अपने आप,
और बन चला मैं अणुसदृश !

करुणा के सागर हैं उमड़ रहे
उन आँखों में अवश्य तुम्हारी !
चीर गयी छाती मेरी इकदम
और हिल उठा अस्तित्व मेरा !
वह कुसुमोपम मंदहास तुम्हारा
खिल उठा चाँदनी के जैसे;
और हो चला मैं इक बिंदु काला !

देखी मैंने दृढ भंगिमा तुम्हारी,
देखी तुम्हारी हल्की सी मुस्कान
जो कर पाती है अनुरणुन
पहुँचकर आसमान के उस पार
और फैल जाता है गाढ रूप से
बिन मचाये शोर भी कोई ,
सहमा गया तब मैं इकदम !

विजय की चोटी पर पहुँचकर भी
बने तुम स्मारक महान वैराग्य का !
हवा पर सवार हो, सजा लिया
तुमने अपने को तारों से गगन के !

याद कर लेने पर तुम्हारे उन
अद्‌भुत कार्यों को, रुक गयी
हवा इस लोक की, और कई
अनगिनत शब्द इस लोक के
बन चले इकदम शून्य के जैसे !
घुटन सी हुई महसूस और लगा
ऐसे कि लटक गया जीव फांसी पर !

उभरने लगता है जब सपना कोई
प्रशांत लोक का, जिसमें होता है
न भेद कोई तर-तम का या
होता है जो अतीत रंग व स्वाद से,
ललकारती है धरती मेरी !
चुंधिया जाती है रोशनी आखों को !
धीरे से छा जाता है अंधेरा !
उतर पड़े थे जो कपड़े सारे, फिर से
जब ढंक जाते हैं मेरे बदन को,
धूल में मिल जाता है अस्तित्व मेरा !
तब शरमाता हूँ देखने में तुमको ;
घोंसले में छिप जाता हूँ दौड़कर !

संगमेश होसमनि

61. गोमटेश्वर

देखो, यह है चन्द्रगिरि ।
देखो है वहाँ इन्द्रगिरि ।
बीच में है दर्पण-सा तलैया !
है यही श्रवणबेळगोळ !

चढो इस पहाड़ पर,
इक सौ आठ सोपानों पर;
एक ही शिला में से निर्मित
यह आंगन है गोमटेश का !
रहो होशियार ! रहो होशियार !
करो पूरी, हे मन, कोशिश अपनी !
मिटा ले दुःख-दर्द अपने सारे !
सामने हैं यह देव खड़े हमारे !
चोटी पर पहुँच कर हैं खड़े !
लोकान्त से बढ़कर है यह एकांत !
सच्चिदानंदमय है यह शान्त, प्रशान्त !
चढ़ो, चढ़ो, चढ़ लो यह चढ़ाई !
पोंछ लो यह पसीना बदन का ।
आये हो तुम बहुत दूर से !
कर रहे हो याद घर-बार की ?
तुम्हारे उस अपने ही गाँव की ?
दिखाई दे रहा है वह मंदिर !
नमन करो उसको सौ सौ बार !

सुगंध है चला आ रहा ।
झोंके हैं ये ठंडी-सी हवा के !

सुंदर हैं बाग नारियल और केलों के !
शान्ति ने मानों लिया है रूप हरियाली का !
हँस रही हैं लताएँ फूलों की हर कहीं ;
श्वेत कमल भी हैं भरे पड़े तलैया में ।
लगता है मानों उतर आयें हैं, हे यात्रिक,
चाँद और सितारे इस आंगन में !

देख रहा हूँ, मैं अदभुत दृश्य यह कैसा ?
जानें कैसी तृप्ति में डूब रहा है मन मेरा ?
मुस्कुराते हुए खड़े हो तुम, हे गोमटेश्वर !
हे त्यागिवर, शिखराग्र है लगता कितना शांत !
इसी कारन बढ़ चले क्या इतनी ऊँचाई तक !
शान्ति-सुधा ही हुई है क्या अवतरित यहाँ !
इस कल्पतरू-सी शिला में खिले हैं फूल क्या ?
धरती पर उतर आयी है शाला आनंदयोग की !
हे देवदेव, भव्य है लगती लीला यह तुम्हारी !
चढ़कर इतनी ऊँचाई तक और पहुँच विश्व को,
देख रहे हो क्या, हे गोमटेश्वर प्यारे हमारे !
हँस रहे हो क्या, देखकर यह स्वार्थ और द्वेष ?
अनदेखी कर रहे हो क्या असूया और ईर्ष्या की ?

सुनाई दे रही है हर कहीं तू-तू-मैं-मैं की बातें !
नहीं, नहीं ! है यही अफवाह इधर, उधर, हर कहीं,
जिनका है न कोई आदि या अन्त भी कोई !
घेरा है क्यों यह संक्रामक रोग हम सबको ?

चीखते-चिल्लाते बह रही है यह धारा पागलपन की !
पहचानते नहीं हो क्या तुम जग के इस नस को ?
करते अनदेखी इन सबकी, खड़े हो, हे गोमटेश्वर !
साध रहे हो क्योंकर मौन ऐसा, हे जगदीश्वर ?

कर दो वर्षा सारे विश्व में तुम्हारी इस शान्ति की !
अंधेरे में रोशनी बनेगी नहीं क्या कान्ति तुम्हारी ?

मुस्कुराहट तुम्हारी बनती है चांदनी सारे जग केलिए !
बह आये यदि ठंडी हवा, तो होता है मंगल सभी का !

अमृत सोमेश्वर

62. पहाड़ी पर का शिशु

ऊँची पहाडी पर नग्न रूप में
खड़े होकर हँसते रहनेवाले
हे शिशु हजार बरसों के !
पहुँचने पर भी चरणों में तुम्हारे,
और निमग्न रहने पर भी
नीरव ध्यान में तुम्हारे,
बन नहीं पाया कभी मैं शुद्ध,
शिशुसदृश तुम्हारे जैसे !
मन मेरा न बन सका नग्न;
देख भी नहीं पाया शून्य को;
मेरे लिए तो हैं आवरण सैकड़ों !
मगर तुम हो निरावरण सुंदर !
तुम हो निष्कल्मश मूर्ति मक्खन जैसे !
मगर मैं हूँ तिनका घास का,
जिसका रंग है फ़ीका पडा !
तुम हो घुंघराले बालों के सुंदर पुरुष
जिसने नज़र है गाड़ी दिव की ओर,
छुटकारा पाते ही अपने भंवर से
भव के संकीर्णतम मंडरों के !
मैं हूँ ऐसा दिशाहारा
लोटता है जो उलझे जाकर
समस्याओं के भंवर में,
और गिर पड़ता है थकामांदा होकर !
भले ही और कुछ न हो मुझमें,
है मुझमें वह मन रीझ सकता है जो
देख निज आनंद में निमग्न तुम जैसों को !

तुम जैसे बनने की भले ही न हो सामर्थ्य,
मन मेरा चढ़ जाता है कभी कभी
इस पहाड़ी पर, और देखते रह जाता है
डुबोते अपने को इस पर्यावरण में !
देख जग को यों मुस्कुराते रहने की रीत,
तुम जैसी, सिखा सकते हो को,
हे सुंदर शिशु बेळगोळ के !

एम. ए. जयचन्द्र

63. गोम्मट–दर्शन

मनु का है यह पुत्र,
आप है मनु भी सोलहवाँ,
राजाओं में है यह राजश्रेष्ठ !
फिर भी !
वचन अपना तोड़कर
भंग कर ली प्रतिष्ठा अपनी !
विजयी बना था जो,
भाई था जो अपना छोटा,
उसी पर कर दिया
प्रयोग चक्ररत्न का !

फिर भी हुआ क्या ?
कर्म के हुए दांत खट्टे ;
धर्म की हुई प्रतिष्ठा ;
लज्जितों में हुआ चक्रि अति लज्जित !
मुख उसका हो गया छोटा ;
अनुज को अपनी खुशी में
हुआ अनुभव अतीव खेद का !

पुरु परमेश का पुत्र भी अपने को
मुक्त कर न पाया भूचक्र के व्यामोह से !
– यों सोच, हे बाहुबलि,
हुए तुम अति दुःखित ।
भले ही हुए थे तुम विजयी,
बनकर आप मनुओं का मनु,
दे दिया दान में वह सब कुछ अपना
उस हारे हुए को, एक ही क्षण में !

इहलोक की विजय की चोटी पर,
परार्थ के वास्ते, परमपद के वास्ते ,
उतार फेंक दिये तुमने सारे
उन वस्त्रों व आभषणों को अपने,
और बन चले इकदम नंगे ।
मन को नग्न करने के वास्ते
चल पड़े तुम हिमवत पर्वत की ओर तप करने ।
तज दिया मोह सारा पुत्र-कलत्र आदि का !

युग के आरंभ में
अमुक वर्ष में किये थे तुमने दर्शन जिसके,
उसको यहाँ इस कलजुग में
हमारी इन्द्रगिरि के ऊपर,
इस शिखराग्र में कर दिया
संस्थापित कान्तशिला के रूप में !

हे मेरे मन के नाथ, गोम्मटेश्वर !
इन्द्रजाल के जैसे इन्द्रगिरि पर
दर्शाते रह गये तुम उस दर्शन को,
जो हज़ारों बरसों से रहा अक्षुण्ण-सा,
और रहेगा जो तब तक बने इस जग में
बने रहेंगे जब तक सूरज और चाँद !

हे भाई, करो न इच्छा
मेरी धरती को अपना लेने की !
करूँ यदि मैं इच्छा
तुम्हारी धरती को अपनाने की,
तो झुको मत ऐसे आक्रमण के सामने !
झुक जाओगे यदि, तो बनता है
वह मौत के समान तुमको !
हे मेरे मन के नाथ, हे गोम्मटनाथ ।
रहा यह तुम्हारा वह दर्शन !

हे भाई, मिली थी न शांति कल,
मिली है न आज, मिलेगी न कल युद्ध से !
मिटेगी जब यह भ्रान्ति युद्ध की,
और भ्रान्ति भी रक्त-क्रान्ति की,
मिलेगी तब शान्ति मनुकुल को !
होगी तभी सच्ची प्रशांति ।
हे मेरे मन के नाथ, हे गोम्मटनाथ !
रहा यह तुम्हारा वह दर्शन !

'निकेतन' है जो, चाहिए उसको 'मान';
होना चाहिए उसमें अभिमान इस धरती के प्रति ;
'अनिकेतन' है जो, क्योंकर उसके लिए हो
चिंता 'मान' और अभिमान की !

" दो पांव भर की यह धरती है अग्रज की "!
बन गया न यह 'मान' रोड़ा केवलज्ञान केलिए !
यह धरती हो या वह धरती या कोई भी धरती –
थी इससे पहले भी, है आज भी और रहेगी यह कल भी !
यह है अनादि और अनंत ! यह है न मेरी ;
न तुम्हारी या किसी के बाप की ! इस ज्ञान से
हो गया न प्राप्त वह केवलज्ञान !
हे मेरे मन के नाथ, हे गोम्मटनाथ !
रहा यह तुम्हारा वह 'दर्शन ' !
बन जाये वह मेरा, हे मेरे मन के नाथ !

64. सवाल गोम्मट–सा !

हे गोम्मट –
तुम हो इक विस्मय !
साथ ही इक पहेली भी !

छोटे से विषय पर भी हुए न तुम राजी !
तत्ताव से रहे संबद्ध और कर दिया
भयचकित इस जग को !
तजकर भी सब कुछ इकदम
कर दी सृष्टि तुमने इक और विस्मय की !

जानते हो कि बने हो क्यों तुम पहेली ?
इसलिए कि –
वे क्रान्तियाँ और भ्रान्तियाँ हुई हैं
जो संपन्न इस धरती में युग युग में,
वे रक्त की नदियाँ जो बह चली हैं यहाँ,
वे मानभंग जो हुए हैं यहाँ,
वे छटनाएँ कई स्वातंत्र्य के अपहरण की,
वे प्रकरण भागपत और भागलपुर के –
भंग नहीं कर पाये हैं तुम्हारी उस दिव्य निर्लक्ष्यता को !
मिटा नहीं पाये हैं वह मुस्कान तुम्हारे होठों पर की !
– यह हुआ है संभव कैसे ?
इसको समझ पाने में असमर्थ जो हो गये हैं !

एम. जी. गंगनपळिळ

65. गोम्मट के प्रति

विंध्यगिरि की चोटी पर खड़े रहनेवाले, हे गोम्मट !
दिशाएँ हैं वस्त्र तुम्हारे लिए; आसमान ही छत ;
मेघों की वर्षा से होता है महामस्तकाभिषेक तुम्हारा ;
तेज हवा का झोंका चला देता है पंखा तुम्हारे लिए ;
अंधेरी रात में बनते हैं नक्षत्र ही दीप जैसे तुम्हारे लिए ;
शान्ति है वह नैवेद्य जो है समर्पित सेवा में तुम्हारी ;
बना है विस्मय इस लोक केलिए वह अकेलापन तुम्हारा ;
शब्द हैं बन चले गूंगे-से यहाँ, हे गोम्मटेश !

इस पहाड़ी के उस भारी चट्टान में कर दिया साकार
उस शिल्पकार ने तुम्हारी भीमाकृति की भव्यता को ।
तुम्हारे सुंदर मुखड़े पर के वे घुंघराले बाल जो
उतर आये हैं माथे पर, वह मंदहास ओंठों पर का,
तप का वह तेज जो छलक रहा है तुम्हारी आँखों में,
पावों को आ घेरने वाली फूलों से लदी वे लताएँ,
सुगठित वे अंग-प्रत्यंग सारे तुम्हारे--इन से
इकदम फूट निकलती है सुन्दरता वह निराली !

क्षमा, दया और उदारता, त्याग और वैराग्य,
सहनशीला, सन्मति, धृति और आत्मशान्ति -
ये सभी गुण तुम्हारे हो उठे हैं साकार यहाँ
शिल्पकार की छेनी से उत्कीर्ण इस मूर्ति में !

हे जिनेंद्र ! सब कुछ तजकर इकदम खड़े हुए
जो ऐसे, तुम्हारी उस धीर नग्नता के सम्मुख
मेरी झूठी प्रतिष्ठाएँ सारी झर गयीं इकदम
मिट जाती है भवभीति जैसे आत्मोन्नति के सम्मुख !
उत्तुंग वैराग्य की पृष्ठभूमि में पीट रहे हो तुम

ढिंढोरा जो जीवदया का, उसके लिए, हे लोकगुरु,
हाथ जोड़कर करूँगा मेरे प्रणामों को अर्पित !

66. बाहुबलि

हे सिद्ध, हे बाहुबलि !
हे महामूर्ति मंदहास की !

तुम्हारा यह निर्वाण है
बना खज़ाना वैराग्य का ;
तुम्हारी यह उत्तुंगता है
प्रतीक बनी महाविजय का ;
साधती है जब मानवता इसे,
लजाती नहीं हैं क्या दानवता !

सर्दी और ठंडी-सी हवा,
वर्षा और चिलचिलाती धूप,
गाज और बिजली--इनसे
हैं डर जाते हम लोग ।
मगर तुम हो खड़े रौंदते
भोग की आशाओं को जग के !

देख तुम्हारी इस अचलता को
देख तुम्हारे उस महात्याग को
मन मेरा झुक गया है प्रणाम में ;
स्थिरता के तुम्हारे उस दीप में से
करोगे नहीं इक किरण मुझको प्रदान ?

एम. जी. गंगनपळिळ

67. श्रीचरण गोम्मट के

ये हैं श्रीचरण शांति के, उस प्रभु के;
ये हैं श्रीचरण मिलता है सहारा जिनसे सब को;
ये हैं श्रीचरण उस श्री गोम्मट देव के
खड़े है जो जगतीतल की प्रस्थभूमि के ऊपर !

ये हैं श्रीचरण उस जितकाम के
ये हैं श्रीचरण वीतराग के;
ये हैं श्रीचरण समता के सत्व के;
ये हैं श्रीचरण जो हैं प्रतिक जिनतत्व के;
ये हैं श्रीचरण जो हैं प्रतीक सत्यसंपदा के;
ये हैं श्रीचरण जिनसे प्राप्त होता है पुण्य ;
ये हैं श्रीचरण जो हैं प्रतीक करुणा के तीर्थ के ;
ये हैं श्रीचरण करुणालू श्री गोम्मटदेव के !

ये हैं श्रीचरण जो हैं परे इस लोक से ;
ये हैं श्रीचरण जो हैं परे उस लोक से ;
ये हैं श्रीचरण जिनसे मिलता है मुक्ति राज्य ;
ये हैं श्रीचरण जिनकी सेवा करता है त्यागिवृन्द ;
ये हैं श्रीचरण जो हैं प्रतीक शुद्ध तप के ;
ये हैं श्रीचरण खोलते हैं जो द्वार आत्मदर्शन के ;
ये हैं श्रीचरण बिखेरते हैं जो सुनहली किरणें ज्ञान की ;
ये हैं श्रीचरण करुणालू श्री गोम्मटदेव के !

ये हैं श्रीचरण स्वीकार करते हैं जो
अभिषेक दूध का शुद्ध संकल्प से समर्पित;
ये हैं श्रीचरण जिनकी कृपा से मिलती है
शान्ति इस विश्वगोल में हम सब को;
ये हैं श्रीचरण जिनसे होता है उद्धार

सब जीवियों का हमारे इस जग में;
ये हैं श्रीचरण जिनसे मिलते हैं प्यार और स्नेह ;
ये हैं श्रीचरण जो हैं प्रतीक भुवन के भाग्य के ;
ये हैं श्रीचरण करुणालू श्री गोम्मटदेव के !

ये हैं श्रीचरण जिनसे मिलती है प्रेरणा उद्धार की;
ये हैं श्रीचरण जो हैं विराजमान विंध्यगिरि के श्रृंग में;
ये हैं श्रीचरण जो हैं प्रतीक भुवनजिनालय की उत्तुंगता के;
ये हैं श्रीचरण जो हैं प्रतीक लोगों के भाग्य के;
ये हैं श्रीचरण करुणालू श्री गोम्मटदेव के !

पी. जयलक्ष्मी अभयकुमार

68. बोलते नहीं हो क्योंकर ?

तुम्हारे सौभाग्य के, तुम्हारे सौन्दर्य के
महाद्वार पर आ खड़ी हूँ, हे तात !
हाथ जोड़कर माँगूगी, भाग्यवती मैं तुमसे ।
हे तात, हे गोमटेश, हे विंध्यगिरीश, हे बाहुबलीश ।

कुछ मत दो मुझको ; न चाहिए मुझको सचमुच ।
हँसो मत, हे तात, देखकर मुझको; पगली हूँ नहीं ।
आदर से तुम्हारे प्रति आयी हूँ ; उठाओगे नहीं मुझको ?
लाड़ला यह बेटा मचा रहा है बहुत ही शोर ।
फिर भी सुनो न बिनती मेरी ! हे तात मेरे !

भाग्यवती हूँ मैं; हे तात, परम भाग्यवती हूँ मैं !
हे पुरु परमेश, मैं भी एक हूँ पुत्रसंतति में तुम्हारी !
दया-धरम के कारन मिला है मानवजनम मुझको ।
चतुर हूँ कि समझ पाति हूँ - चाहिए क्या, न चाहिए क्या ?
इतना ही नहीं, विस्मय भी नहीं होता मुझको ।
चूँकि यह जग सारा है जैनेंद्र की मुद्रा से अंकित ।
हे, बाहुबलि मेरे, आँचल पसार कर माँगती हूँ तुमसे !
बताओ मुझे अनेकतामय धर्म का वह मर्म !
बोलते नहीं हो क्योंकर ? हे तात मेरे प्यारे !

इस परिवार में तो मैं हूँ परम भाग्यवती !
क्योंकि मिला है मुझको सब कुछ भी, संपत्ति
और जायदाद भी ; भोग-भाग्यों की राशि भी ;
आनंद से उमड़ता प्यारा परिवार भी जिसमें हैं
वात्सल्य से पेश आनेवाले सास और ससुर,
ननद और देवर; पतिदेव भी इछा के अनुकूल;
इतना ही नहीं इन्द्रियों का वह सौभाग्य भी मिला है

जिससे समझ पाती हूँ ज्ञान की बातें सारी,
जब कभी करते हैं कोई कृपा सुनाने की ऐसी बातें ।

भाग्यवती हूँ मैं; हे तात, परम भाग्यवती हूँ मैं !
पगली नहीं हूँ; दिल खोलकर माँगती हूँ तुमसे ;
हटाओ मत मुझको; बोलो मुझसे कृपया, हे तात !
है नहीं क्या तुम प्रिय कुमार उस वृषभेश का ?
है नहीं क्या तुम प्यारे लाड़ले सुनंदादेवी का ?
बन कर राजा पौदनपुर का, बने तुम दीपशिखा,
दर्शाती रही जो सही राह प्रजाओं को अपनी !

हे तात मेरे ! किस किस भांति बखानूँ तुमको ?
तुम में है न वह सामर्थ्य जिससे खिला सकते हो
धर्म की अनुपम लता में कुसुम तुम त्याग का !
हे तात ! करोगे न रक्षा मेरी ? चलाओगे न मुझे
सच्चे धर्म के पथ पर, और सत्य की सन्निधि की ओर !

इक दो नहीं, हजारों बरसों से हो विराजमान !
सुनकर ही नहीं, देखकर भी तुम्हारी माया को
हर्ष मैं मनाती रही : भरतेश को हरा युद्ध में,
जीवन के प्रति बरत कर भाव वैराग्य का, और
तप में निमग्न होकर, खोल दिया तुमने इकदम
मोक्ष का वह महाद्वार, हे तात तीनों लोकों के !
मिले मुझको सद्धर्म की रक्षा श्री जिनशासन की !
मिले मुझको वह दीक्षा पवित्र-सी इस धर्म की ।
यही है मन्नत मेरी; यही है भिक्षा, जो चाहिए मुझे :
मिले हर जनम में मुझको तुम्हारे सद्धर्म की रक्षा !

उप्पुंद चन्द्रशेखर होळळ

69. संदेश श्री गोम्मट का !

कार्कळ के गोम्मट हैं खड़े सीधे ।
मगर दृष्टि है उनकी किस ओर ?
यह है वह जिनदेव जिसने पायी विजय
तोड़कर वे पाश आशा, पीड़ा और मृत्यु के !

यहाँ से वहाँ तक यह है पहाड़ पत्थर का ।
प्रत्युत्तर या पतिध्वनि केलिए जगह है कहाँ ?
पश्चिम की ओर दिखायी देती है लहरें उस
सागर की, आपस में जिनकी होड की है सीमा कोई ?

जाने किसने तराशा, किसने किया संस्थापन ?
काले रंग के पत्थर की बनी काली प्रतिमा है यह ।
चांदनी रात है या अधेरा है छा गया यहाँ !
– किसी चीज़ के प्रति नहीं है आक्षेप, ऐसा है स्थिर भाव !

भोंका है कुत्ता ; आवाज दी है कौए ने; हुए हैं
यह सब निष्फल; बदला नहीं कुछ भी !
धूप है बनी चिलचिलाती, जोरों की वर्षा है हुई,
मगर, हुआ नहीं इनका कोई असर बाहरी सतह पर !

Rs. 50